संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

ऋषि प्रसाद

हिन्दी

वर्ष : १३
अंक : १२२
फरवरी २००३
माघ मास
विक्रम सं. २०५९

महाशिवरात्रि : १ मार्च २००३
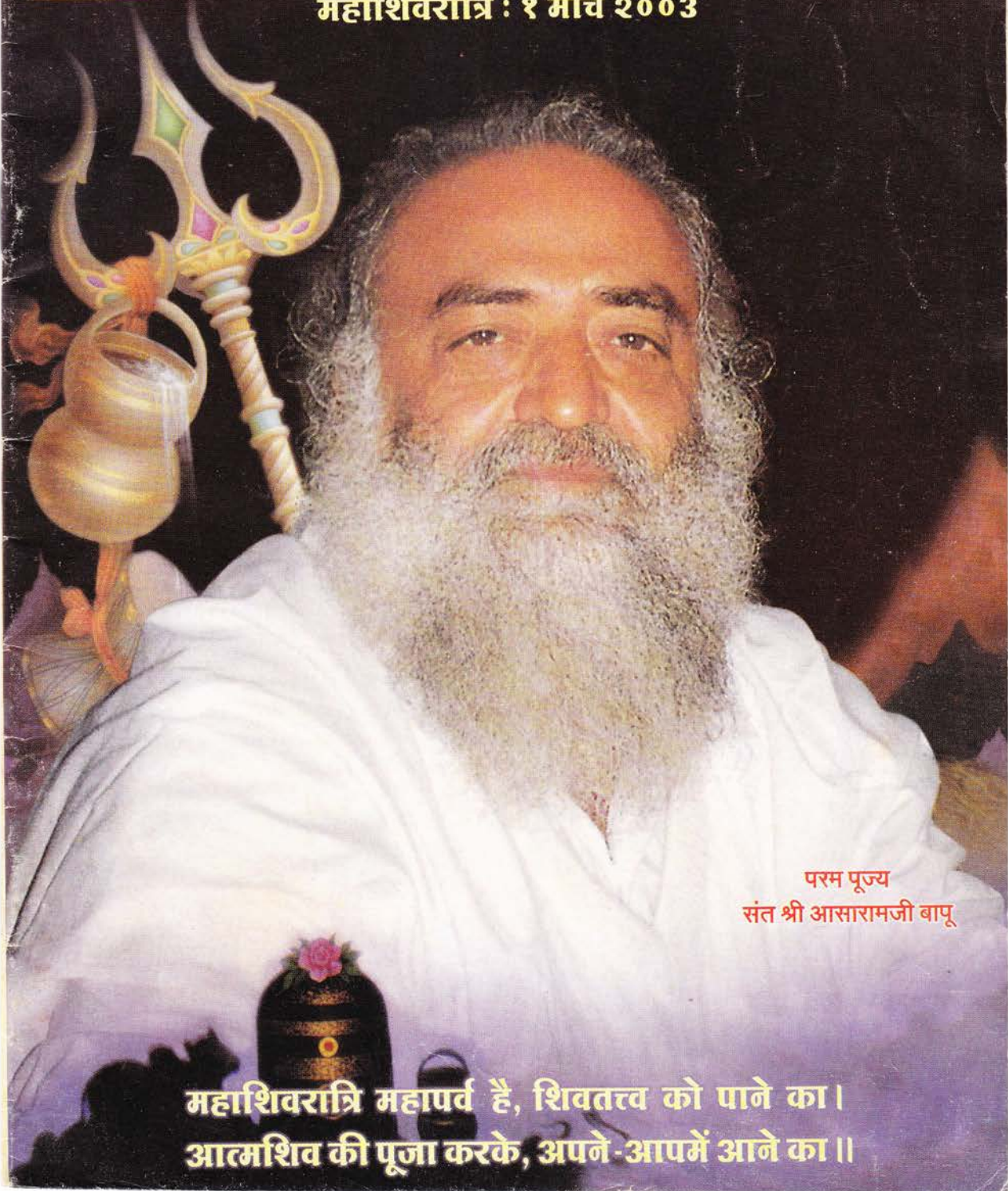
परम पूज्य
संत श्री आसारामजी बापू

महाशिवरात्रि महापर्व है, शिवतत्त्व को पाने का।
आत्मशिव की पूजा करके, अपने-आपमें आने का ॥

नित्य विविध प्रयोग करायें... सबको निर्भय योग सिखायें... सबका आत्मोत्थान करायें...

पूज्य बापूजी के सान्निध्य में सद्ज्ञानवर्धक सत्संग एवं नियामक शक्ति व आज्ञाचक्र विकासक शशांकासन का लाभ लेते भेटासी के श्रद्धालुगण।

शरण तुम्हारी मंगलकारी, कृपा तुम्हारी सर्वहितकारी। लूट रहे सुख-सिंधु खजाने, दर पे तेरे लाखों नर-नारी॥

ऋषि प्रसाद

वर्ष : १३
अंक : १२२
९ फरवरी २००३
माघ मास, विक्रम संवत् २०५९
मूल्य : रु. ६-००

सदस्यता शुल्क

भारत में

(१) वार्षिक : रु. ५०/-
(२) पंचवार्षिक : रु. २००/-
(३) आजीवन : रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में

(१) वार्षिक : रु. ७५/-
(२) पंचवार्षिक : रु. ३००/-
(३) आजीवन : रु. ७५०/-

विदेशों में

(१) वार्षिक : US $ 20
(२) पंचवार्षिक : US $ 80
(३) आजीवन : US $ 200

कार्यालय **'ऋषि प्रसाद'**
श्री योग वेदान्त सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, साबरमती, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) २७५०५०१०-११.
e-mail : ashramindia@ashram.org
web-site : www.ashram.org

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम
प्रकाशक और मुद्रक : कौशिक वाणी
प्रकाशन स्थल : श्री योग वेदान्त सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा (गांधीनगर), साबरमती, अमदावाद-५.
मुद्रण स्थल : पारिजात प्रिन्टरी, राणीप और विनय प्रिन्टिंग प्रेस, अमदावाद।
सम्पादक : कौशिक वाणी
सहसम्पादक : प्रे. खो. मकवाणा

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

Subject to Ahmedabad Jurisdiction

अनुक्रम

पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग

SONY चैनल पर 'संत आसारामवाणी' सोमवार से शुक्रवार सुबह ७.३० से ८ व शनिवार और रविवार सुबह ७.०० से ७.३०
संस्कार चैनल पर 'परम पूज्य लोकसंत श्री आसारामजी बापू की अमृतवर्षा' रोज दोप. २.०० से २.३० तथा रात्रि १०.०० से १०.३०
'संकीर्तन' सोमवार तथा बुधवार सुबह ९.३० और मंगल तथा गुरुवार शाम ५.०० बजे

प्रभु का धन्यवाद

धन्यवाद प्रभु का किया करो,
फरियाद न तुम कभी किया करो।
संतों की वाणी के अमृत को,
जी भर-भर के तुम पिया करो॥
धन्यवाद...

सत्संग मिला तो छूटा कुसंग,
भक्ति की मन में उठी तरंग,
सेवा सत्कर्म करने की जागी उमंग।
शुभ आचरण में हमारे कमी न हो,
कोशिश इस बात की किया करो॥
धन्यवाद...

सत्संग हमें नित मिलता रहे,
प्रभु-प्रेम का पौधा खिलता रहे,
वैराग्य हमारा निखरता रहे।
आत्मसाक्षात्कार हो जाय मुझे,
प्रार्थना प्रभु से बस यही किया करो॥
धन्यवाद...

- अशोक भाटिया
('ऋषि प्रसाद' के दैवी कार्य में भागीदार).

*

उपजे नव आह्लाद

नयी प्रेरणा नयी चेतना, नवोत्साह जो लाता।
वैदिक पद्धति से जीवन, जीने की कला बताता॥
आपस के विद्वेष मिटाता, उपजाता अपनत्व।
निगम-अगम नाना पुराण के, भरे ज्ञान के तत्त्व॥
मिटे निराशा भ्रान्ति मिटे, फिर उपजे नव आह्लाद।
'आशा' की नव किरण जगाता, है यह 'ऋषि प्रसाद'॥

- सुरेश चन्द्र श्रीवास्तव, इलाहाबाद (उ.प्र.).

साची वही है स्वाधीनता

साची वही है स्वाधीनता,
अडिग अचल आत्म विश्वास।
मानव से महामानव बनने का,
होता रहे सदा प्रयास॥

जाग्रत वही है मानवता,
दीन-दुःखी का हो अहसास।
योगयुक्त करुणामय जीवन,
जगे प्रभु-प्रेम की प्यास॥

परिपूर्ण साची आत्मीयता,
जहाँ हर्ष, आनंद-उल्लास।
आत्मभाव रहे अपनापन,
निश्चय हो समता का भास॥

धन्य धन्य है विनयशीलता,
स्नेह नम्रता जिसके पास।
शील धर्म संतोष सुखद है,
जिसका स्व में सदा निवास॥

सबसे उत्तम है उदारता,
प्रेम माधुर्य, त्याग है खास।
पर उपकार, निष्काम हो सेवा,
'साक्षी' अंतर ज्ञान प्रकाश॥

सार्थक सदा वही सफलता,
हो न कभी मनवा निरास।
संयम, बुद्धिबल, सात्त्विक मन,
निज घट में, अलख की आस॥

- जानकी चंदनानी, अमदावाद.

** आत्म-साक्षात्कारी गुरु के लिखे हुए ग्रंथ परोक्ष सत्संग जैसे हैं। आप जब सम्पूर्ण श्रद्धा और भक्ति से उनका अध्ययन करते हैं तब आपके पावन गुरु के साथ आपका पूर्ण सायुज्य होता है। हररोज उन ग्रंथों का अभ्यास करो। आपको उनसे प्रेरणा मिलेगी।*

** जो लोग नियमित रूप से सत्संग करते हैं उनमें ईश्वर और शास्त्रों में श्रद्धा, गुरु एवं ईश्वर के प्रति प्रेम और भक्ति का धीरे-धीरे विकास होता है।*

असली पुरुषार्थ

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

जब तक मनुष्य के मन में तृष्णा है, वासना है और जगत का महत्त्व है तब तक जीवन तबाह होता रहता है, किन्तु जब मन का उपशम हो जाता है तब वह ईश्वर के साथ एक हो जाता है। जिसने अपने मन को आत्मा में लगा दिया उसके आगे त्रिलोकी भी तुच्छ हो जाती है।

'हमें यह करना है... हमें वह करना है...' ऐसा सोचकर मानव उन चीजों के पीछे, जो दुःख देती हैं, चिन्ता देती हैं और अन्त में जिन्हें छोड़कर मरना पड़ता है, अपना जीवन खपा देता है। मानव शूरमा होकर जीवन में अनेकों प्रहार सह लेता है, आत्मदाह जैसा कष्ट भी सह लेता है किन्तु अपने मन को शांत करने के लिए प्रयत्न नहीं करता, यह कैसा दुर्भाग्य है उसका !

राष्ट्रपतियों का राष्ट्रपति जो परब्रह्म परमात्मा अपना आत्मा है, अगर उसका अनादर करके आप जगत की चीजों के पीछे लगे तो फिर भोगो दुःख... अपने परमात्म-स्वभाव को आपने नहीं जाना तो खाओ जूते... कभी जरा प्रेम के जूते तो कभी जरा रूखे, तो कभी रंग-बिरंगे... ।

एक आदमी किसी महाराज के पास गया और बोला : ''महाराज ! इन जूतों ने मुझे बड़ा तंग कर रखा है, मेरे पैरों में छाले पड़ गये हैं। क्या करें ?''

महाराज : ''केवल इतनी-सी बात पूछने आया है ! उतारकर फेंक दे इन जूतों को।''

''महाराज ! यह उपाय मेरे लिए नहीं है। जूते पहनने से मेरे पैरों में भले ही छाले पड़ गये हैं, पीड़ा से कराहने लगा हूँ किन्तु इस पीड़ा में मैं शरीर की दूसरी पीड़ाओं को भूल जाता हूँ। इसलिए ये जूते भले ही मेरे पैरों में पड़े रहें।''

पीड़ा सहने की आदत पड़ गयी है मनुष्य को... छोटी-छोटी मुसीबत सहता रहता है, जबकि जन्म-मरण की एक बड़ी मुसीबत सामने पड़ी है। मनुष्य-जन्म मिला है जन्म-मरण के चक्र को तोड़ने के लिए किन्तु मूर्ख उसे नश्वर चीजों में गँवा देता है...

मन तू ज्योतिस्वरूप, अपना मूल पिछान...

अपने शुद्ध 'मैं' को जरा जान लो भैया ! यदि किसीसे पूछो कि आप कौन हो ? और वह बताये- पता नहीं। कहाँ से आये हो ?- पता नहीं। बाद में कहाँ जाओगे ?- पता नहीं। ...तो ऐसे आदमी को आप क्या बोलोगे ?

कोई कहे कि 'मैं पदवीधारी हूँ... मैं सेठ हूँ...' तो मूर्ख है वह। पढ़ाई या पैसे का अपने ऊपर आरोप करके अपने को पदवीधारी या सेठ मानता है तो वह गलती करता है। वास्तव में वह कौन है, इस बात का उसे पता ही नहीं है। एक-दो नहीं, सभीका हाल ऐसा है। कहाँ से आये हैं ? पता नहीं... मरकर कहाँ जायेंगे ? यह भी पता नहीं... वास्तव में क्या हैं ? यह भी पता नहीं... गोरखनाथजी ने ठीक ही कहा है :

एक भूला दूजा भूला भूला सब संसार।
बिन भूल्या एक गोरखा जाको गुरु आधार ॥

समय बीता जा रहा है। सुई के छिद्र में धागा पिरोने अथवा बिजली के चमकने में जितना समय लगता है उतनी ही तो अपनी उम्र है देवताओं और ब्रह्माजी की उम्र के आगे। इतनी क्षणभंगुर जिंदगी को इधर-उधर के भटकाव में खर्च करना कहाँ की बुद्धिमानी है ? इसे ईश्वर-प्राप्ति में लगाना चाहिए। ऐसा अवसर बार-बार नहीं मिलता।

ईश्वर को पाना कठिन काम नहीं है, दुःखों से पार होना कठिन काम नहीं है लेकिन जो करना चाहिए वह प्रमाद और लापरवाही के कारण नहीं करते और जो नहीं करना चाहिए उसीके पीछे मारे-मारे फिरते रहते हैं।

ईश्वर-प्राप्ति के लिए तीन बातें आवश्यक हैं : विचार, पुरुषार्थ एवं गुरुकृपा अथवा ईश्वरकृपा।

विचार का मतलब केवल अपना विचार नहीं। केवल विचार-विचार से तो सिर फटने लगेगा। शास्त्र के अनुसार विचार होना चाहिए। नित्य क्या है- अनित्य क्या है ? करणीय क्या है- अकरणीय क्या है ? आदि का विचार होना चाहिए।

पुरुषार्थ तो करें किन्तु वह शास्त्रसम्मत और संतसम्मत हो। पुरुष तो परब्रह्म परमात्मा हैं। उनकी प्राप्ति के अर्थ यत्न करना ही पुरुषार्थ है। बाकी के सब यत्न प्रकृति के अर्थ हैं। **पुरुषस्य अर्थः इति पुरुषार्थः।**

इसी प्रकार गुरुकृपा भी जरूरी है। **गुरुकृपा हि केवलं शिष्यस्य परं मंगलम्।** लेकिन गुरुकृपा अकेली नहीं, गुरुकृपा के साथ अपना पुरुषार्थ भी होना चाहिए। जैसे सूर्य का प्रकाश हो, बरसात हो, जमीन भी हो लेकिन किसान पुरुषार्थ ही न करे, अथवा करे किन्तु ऋतु के अनुकूल न करे तो वह फसल का उत्पादन ही नहीं कर सकता। ऐसे ही साधक के जीवन में सद्गुरु हों, गुरुकृपा भी बरस रही हो किन्तु वह पुरुषार्थ ही न करे, अथवा पुरुषार्थ तो करे किन्तु शास्त्रसम्मत न करे, अपने मन के अनुसार ही करे तो वह सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता। अतः पुरुषार्थ विवेकयुक्त तथा शास्त्रसम्मत-संतसम्मत होना चाहिए, तभी मनुष्य ईश्वर-प्राप्ति के लक्ष्य को पाने में सफल हो सकता है। सब दुःखों से पार ब्रह्मानंद की प्राप्ति करके इस लोक में परम सुखी और परम पद में भी प्रतिष्ठित हो सकता है।

सारी झंझटों का कारण

१८ जनवरी की शाम पूज्यश्री ने मानव-जीवन में व्याप्त झंझटों का विश्लेषण करते हुए कहा : "सारी झंझटें तीन कारणों से हैं- वासना, चंचलता और अज्ञान। इन तीनों के कारण सब करा-कराया चौपट हो जाता है। धर्म-अनुष्ठान से वासना नियंत्रित करो। उपासना से वासना को शुद्ध करो और ज्ञान से अज्ञानजनित वासना को मिटाओ तो आप निर्वासनिक नारायण में पहुँच जाओगे।"

पाँचवें अध्याय का माहात्म्य

श्रीभगवान कहते हैं : देवी ! अब सब लोगों द्वारा सम्मानित पाँचवें अध्याय का माहात्म्य संक्षेप में बतलाता हूँ, सावधान होकर सुनो। मद्र देश में पुरुकुत्सपुर नामक एक नगर है। उसमें पिंगल नामक एक ब्राह्मण रहता था। वह वेदपाठी ब्राह्मणों के विख्यात वंश में, जो सर्वथा निष्कलंक था, उत्पन्न हुआ था, किन्तु अपने कुल के लिए उचित वेद-शास्त्रों के स्वाध्याय को छोड़कर ढोल बजाते हुए उसने नाच-गान में मन लगाया। गीत, नृत्य और बाजा बजाने की कला में परिश्रम करके पिंगल ने बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त कर ली और उसीसे उसका राजभवन में भी प्रवेश हो गया। अब वह राजा के साथ रहने लगा और परायी स्त्रियों को बुला-बुलाकर उनका उपभोग करने लगा। उसका मन स्त्रियों के सिवा और कहीं नहीं लगता था। धीरे-धीरे अभिमान बढ जाने से उच्छृंखल होकर वह एकांत में राजा से दूसरों के दोष बतलाने लगा। पिंगल की एक स्त्री थी, जिसका नाम था अरुणा। वह नीच कुल में उत्पन्न हुई थी और कामी पुरुषों के साथ विहार करने की इच्छा से सदा उन्हींकी खोज में घूमा करती थी। उसने पति को अपने मार्ग का कण्टक समझकर एक दिन आधी रात में घर के भीतर ही उसका सिर काटकर मार डाला और उसकी लाश को जमीन में गाड़ दिया। इस प्रकार प्राणों से वियुक्त होने पर वह यमलोक में पहुँचा और भीषण नरकों का उपभोग करके निर्जन वन में गिद्ध हुआ।

अरुणा भी भगन्दर रोग से अपने सुन्दर शरीर को त्यागकर घोर नरक भोगने के पश्चात् उसी वन

में शुकी हुई। एक दिन वह दाना चुगने की इच्छा से इधर-उधर फुदक रही थी, इतने में ही उस गिद्ध ने पूर्वजन्म के वैर का स्मरण करके उसे अपने तीखे नखों से फाड़ डाला। शुकी घायल होकर पानी से भरी हुई मनुष्य की खोपड़ी में गिरी। गिद्ध पुनः उसकी ओर झपटा। इतने में ही जाल फैलानेवाले बहेलियों ने उसे अपने बाणों का निशाना बनाया। उसकी पूर्वजन्म की पत्नी शुकी उस खोपड़ी के जल में डूबकर प्राण त्याग चुकी थी। फिर वह क्रूर पक्षी भी उसीमें गिरकर डूब गया। तब यमराज के दूत उन दोनों को यमराज के लोक में ले गये। वहाँ अपने पूर्वकृत् पापकर्म को याद करके दोनों ही भयभीत हो रहे थे। तदनन्तर यमराज ने जब उनके घृणित कर्मों पर दृष्टिपात किया, तब उन्हें मालूम हुआ कि मृत्यु के समय अकस्मात् खोपड़ी के जल में स्नान करने से इन दोनों का पाप नष्ट हो चुका है। तब उन्होंने उन दोनों को मनोवांछित लोक में जाने की आज्ञा दी। यह सुनकर अपने पाप को याद करते हुए वे दोनों बड़े विस्मय में पड़े और धर्मराज के पास जाकर उनके चरणों में प्रणाम करके पूछने लगे : 'भगवन्! हम दोनों ने पूर्वजन्म में अत्यन्त घृणित पाप का संचय किया है, फिर हमें मनोवांछित लोकों में भेजने का क्या कारण है ? बताइये।'

यमराज ने कहा : गंगा के किनारे वट नामक एक उत्तम ब्रह्मज्ञानी रहते थे। वे एकांतसेवी, ममतारहित, शांत, विरक्त और किसीसे भी द्वेष न रखनेवाले थे। प्रतिदिन गीता के पाँचवें अध्याय का जप करना उनका सदा का नियम था। पाँचवें अध्याय को श्रवण कर लेने पर महापापी पुरुष भी सनातन ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। उसी पुण्य के प्रभाव से शुद्ध चित्त होकर उन्होंने अपने शरीर का परित्याग किया था। गीता के पाठ से जिनका शरीर निर्मल हो गया था, जो आत्मज्ञान प्राप्त कर चुके थे, उन्हीं महात्मा की खोपड़ी का जल पाकर तुम दोनों पवित्र हो गये हो। अतः अब तुम दोनों मनोवांछित लोकों को जाओ, क्योंकि गीता के पाँचवें अध्याय के माहात्म्य से तुम दोनों शुद्ध हो गये हो।

श्रीभगवान कहते हैं : सबके प्रति समान भाव रखनेवाले धर्मराज के द्वारा इस प्रकार समझाये जाने पर वे दोनों बहुत प्रसन्न हुए और विमान पर बैठकर वैकुण्ठ धाम को चले गये।

श्रीमद्भगवद्गीता के पाँचवें अध्याय के कुछ श्लोक

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते॥

जिसका मन अपने वश में है, जो जितेन्द्रिय और विशुद्ध अन्तःकरणवाला है तथा सम्पूर्ण प्राणियों का आत्मरूप परमात्मा ही जिसका आत्मा है, ऐसा कर्मयोगी कर्म करता हुआ भी लिप्त नहीं होता।(७)

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा॥

जो पुरुष सब कर्मों को परमात्मा में अर्पण करके और आसक्ति को त्यागकर कर्म करता है, वह पुरुष जल से कमल के पत्ते की भाँति पाप से लिप्त नहीं होता।(१०)

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः॥

सर्वव्यापी परमेश्वर भी न किसीके पापकर्म को और न किसीके शुभ कर्म को ही ग्रहण करता है, किन्तु अज्ञान के द्वारा ज्ञान ढका हुआ है, उसीसे सब अज्ञानी मनुष्य मोहित हो रहे हैं।(१५)

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

जो ये इन्द्रिय तथा विषयों के संयोग से उत्पन्न होनेवाले सब भोग हैं, यद्यपि विषयी पुरुषों को सुखरूप भासते हैं तो भी दुःख के ही हेतु हैं और आदि-अन्तवाले अर्थात् अनित्य हैं। इसलिए हे अर्जुन! बुद्धिमान विवेकी पुरुष उनमें नहीं रमता।(२२)

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

मेरा भक्त मुझको सब यज्ञ और तपों का भोगनेवाला, सम्पूर्ण लोकों के ईश्वरों का भी ईश्वर तथा सम्पूर्ण भूत-प्राणियों का सुहृद अर्थात् स्वार्थरहित दयालु और प्रेमी, ऐसा तत्त्व से जानकर शान्ति को प्राप्त होता है।(२९)

भगीरथ और त्रितल मुनि

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

जो अपने जीवन को व्यर्थ के भोगों में लगाता है, व्यर्थ के दुनिया के मजों में लगाता है, वह धीरे-धीरे रोगग्रस्त होकर शुष्कमना हो जाता है। व्यर्थ चिन्तन से उसके जीवन में नीरसता आ जाती है।

राजपाट का सुख भोगकर अंत में राजा भगीरथ के चित्त में विवेक का दीप जगा कि इतना राज-वैभव और सुख भोगने के बाद भी सुख की चाह न मिटी और आयुष्य क्षीण हो रहा है। जिस शरीर को सुख-सुविधाएँ दिलायीं, वह शरीर भी अब शुष्क हो गया है।

व्यर्थ भोगों से और व्यर्थ चिन्तन से उत्पन्न नीरसता का नाश करने के लिए महापुरुषों ने उपाय बताये हैं। उदारता, प्रसन्नता और प्रेम का व्यवहार तथा चिन्तन नीरसता को खाकर स्वाधीन, प्रेममय, प्रसन्नतापूर्ण और उदार जीवन का आरंभ करा देता है।

स्वाधीन जीवन किसका है ? जिसको किसी वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति से सुख माँगने की गुलामी नहीं करनी पड़ती। वह जब भी गोता मारे, अपने सुख-स्वरूप में ज्यों-का-त्यों विश्रांति पाने में समर्थ हो, उसका जीवन ही स्वाधीन जीवन है। शेष सब तो दासता की जंजीर से आबद्ध हैं कि 'हे सिगरेट ! तू सुख दे... हे शराब ! तू सुख दे... हे पानमसाले ! तू सुख दे... हे कचौड़ी ! तू सुख दे...।' यह स्वाधीन जीवन नहीं, पराधीन जीवन है।

राजा जानते थे कि स्वाधीन, उदार और प्रेममय जीवन, नित्य नवीन रस देनेवाला जीवन केवल संत-महापुरुषों की शरण में जाने से ही मिल सकता है। एम. बी. बी. एस. हो गये तब भी जानकार डॉक्टरों के साथ अभ्यास करना पड़ता है। जैसा ज्ञान चाहिए, उसके विशेषज्ञों का संग करना पड़ता है।

राजा भगीरथ त्रितल मुनि की शरण में गये और उनके श्रीचरणों में प्रणाम करते हुए उन्होंने कहा : "हे मुनीवर ! इस संसार के भोगों ने, मजों ने मेरे जीवन को तबाही और आयुष्य-नाश के रास्ते लगाकर जीर्ण-शीर्ण कर दिया है। अब मुझे स्वाधीन जीवन जीने की कुंजी बताने की कृपा करें। मुझ पर कृपा कीजिये कि मुझे आत्मा-परमात्मा का रस प्राप्त हो।"

आत्मारामी संत त्रितल मुनि ने कहा : "स्वाधीन जीवन को खानेवाला, निगल जानेवाला, हमें नित्य जीवन से विमुख करनेवाला राग-द्वेष है। राग-द्वेष होता है संसार को सँजोये रखने से और देह को 'मैं' मानने से। तुम संसार को सँजोने का काम छोड़ दो। तुम्हारे पास धन और राज्य है इसीलिए खुशामदखोरों के प्रति तुम्हारा राग हो जाता है और विघ्न डालनेवालों के प्रति द्वेष हो जाता है।

तुम्हारे जो शत्रु राज्य लेने की कामना रखते हैं उनको अपना राज्य दे दो और क्षोभ से रहित होकर पुत्र, स्त्री और बांधवों के मोह से रहित बनो। अपने शरीर में जो मोह है उससे भी रहित होकर राज्य का त्याग करके एकांत देश में स्थित हो और शत्रु के घर से भिक्षा माँगकर खाओ एवं विचरण करो।'

राजा भगीरथ ने ऐसा ही किया। अपने पास मात्र एक धोती-अँगोछा और भिक्षापात्र रखा, शेष सब यथायोग्य व्यक्तियों को दे दिया और स्वयं राज्य से निकल गये। सत्ता-लोलुपों ने सोचा कि 'राजा ने राजपाट दूसरे को दे दिया है तो अब वह हमारा शत्रु कैसा ?'

विचरण करते हुए राजा भगीरथ जहाँ भूख लगती- भिक्षा माँग लाते, जो कुछ मिलता- प्रेम से खा लेते, जहाँ नींद आती- शयन कर लेते। बाहर से तो बड़े गरीब जैसे दिखते, किन्तु भीतर से उनका औदार्य, प्रेम और माधुर्य बढ़ता गया, स्वाधीनता बढ़ती गयी।

विचरण करते-करते वे पुनः त्रितल मुनि के आश्रम में पहुँचे। मुनीश्वर ने तनिक उपदेश दिया और राजा को असली राज्य, आत्मराज्य की प्राप्ति हो गयी। आत्मा-परमात्मा की अनुभूति हो गयी।

तत्पश्चात् त्रितल मुनि ने कहा : ''अब तुम ज्ञातज्ञेय हो गये हो। जो जानना चाहिए वह तुमने जान लिया है, जो पाना चाहिए वह पा लिया है। अब सारा विश्व तुम्हारा है। कहीं भी विचरण करो।''

राजा भगीरथ विचरण करते-करते एक ऐसे राज्य में जा पहुँचे जहाँ के पुत्रहीन राजा की मृत्यु हो गयी थी। उसके मंत्री किसी उत्तम शासक की खोज में थे। जब उन्होंने भिक्षाटन करते हुए विरक्त, तपस्वी भगीरथ को देखा, तब वे उन्हें सत्कारपूर्वक ले आये एवं अपना राजा बना दिया।

कुछ समय पश्चात् एक दिन वहाँ अयोध्या के मंत्री, पुरोहित आदि आये एवं भगीरथ से बोले : ''राजन्! अयोध्या का राज्य आपने अपने जिस सीमावर्ती शत्रु राजा को दान के रूप में दिया था उसकी मृत्यु हो चुकी है। इस कारण दया करके अपने पूर्वराज्य की रक्षा कीजिये।''

इस प्रकार प्रार्थना किये जाने पर राजा भगीरथ ने उनकी बात मान ली और वे सम्पूर्ण पृथ्वी के स्वामी हो गये। बाद में वे सम्पूर्ण राज्य का भार योग्य मंत्रियों के हाथों सौंपकर गंगाजी को पृथ्वी पर लाने हेतु निर्जन अरण्य में तपस्यारत हो गये। भगीरथ द्वारा लाये जाने के कारण गंगाजी का एक नाम 'भागीरथी' भी है। जब राजा पितरों के उद्धार के निमित्त गंगा के प्रवाह को ले आये, तब पुनः शांत पद में स्थित होकर विचरण करने लगे।

कैसी उत्तम समझ थी राजा भगीरथ की! साम्राज्य मिल जाने के बाद भी उसमें फँसे नहीं, जीवन की क्षणभंगुरता को जानकर त्रितल मुनि के चरणों में गये एवं आत्मज्ञान पाकर मुक्त हो गये।

पूरी पृथ्वी तो क्या, त्रिलोकी का राज्य भी जिस आत्मपद के आगे छोटा है उस पद को प्राप्त करने पर फिर कुछ पाना शेष नहीं रह जाता। बुद्धिमान मनुष्य वे ही हैं जो उस पद को पाने का यत्न करते हैं।

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

टिहरी नरेश की अडिग श्रद्धा

वेदान्त जीवन में बड़ा बल देता है। जिसके जीवन में वेदान्त है, उसे संसार की कोई भी परिस्थिति भयभीत नहीं कर सकती। वेदान्त उसको हजार-हजार विरोध झेलने का सामर्थ्य देता है।

उत्तर काशी में ओमाश्रित (ओम आश्रित) नाम के एक प्रसिद्ध संत रहते थे। बाद में उनका नाम बदलकर ओमाश्रम हो गया था। उनके आश्रम का नाम भी 'ओम आश्रम' ही था।

वे वेदान्ती थे। उनकी वाणी में सत्यता और स्वभाव में निश्छलता झलकती थी। धीरे-धीरे उनके पास अधिकाधिक लोग आने लगे। कुछ शिष्य भी बन गये।

अहंकार किसीकी कीर्ति नहीं सह सकता। वह अपने से बढ़कर किसीका यश नहीं देख सकता।

यहाँ भी कुछ सुलफा पीनेवाले रजोगुणी साधु रहते थे। उन्होंने कुप्रचार शुरू कर दिया कि 'ये कैसे संन्यासी हैं! संन्यासी के लिए तो काठ की पुतली का स्पर्श भी वर्जित है, किन्तु ये तो स्त्रियों को भी दीक्षा देते हैं!' इस प्रकार उन्होंने अपना माहौल बना दिया।

ऐसे कुप्रचारक हर जगह पर होते हैं - चाहे उत्तर काशी हो या हिमालय। ऐसे लोग भक्तों की भक्ति का दुरुपयोग करने के लिए न जाने क्या-क्या उपाय करते हैं! यह होता ही आया है, हो रहा है और होता ही रहेगा...

उन भँगेड़ियों की तो ममता थी अपने

संन्यासीपन, त्यागीपन एवं विरक्तपने में। 'हम इतने सालों से संन्यासी का जीवन जी रहे हैं और यह आजकल का लड़का ओमाश्रम ! इसको लोग इतना पूजते हैं !'

वेदान्त को कल का लड़का जानता हो या आज का लेकिन है वह सबका बाप ! चाँगदेव १४०० साल के शिष्य और ज्ञानेश्वर २२ साल के गुरु थे ! ज्ञान के आगे शरीर की आयु, धन, सत्ता सब छोटे हो जाते हैं, क्योंकि अनन्त ब्रह्माण्ड में व्यापे हुए परमात्मा के साक्षात्कार के आगे कोई बड़प्पन होता ही नहीं है।

साधुओं ने कहा : ''हम ८० साल के साधु हैं। इनका तो जन्म भी नहीं हुआ था तबसे हम दीक्षा लेकर बैठे हैं। यह क्या जानता है ? टिहरी के राजा का भी दिमाग खराब हो गया है जो इसको गुरु मानता है। इस राजा को भी जरा सुधारें-समझायें कि धर्म के नाम पर यहाँ क्या-क्या चल रहा है !''

७०-८० साल तो देह की उम्र थी, किन्तु देहाध्यास नहीं मिटा था तो वे अपने को ७०-८० साल का मान रहे थे और ओमाश्रम जानते थे कि उम्र देह की है, वास्तव में हम देह नहीं हैं।

वे सब अपना एक मंडल बनाकर टिहरी नरेश के पास गये और उनसे कहा : ''आप जिनको गुरु मानते हैं, अपने उन गुरु के हाल तो देखें। साधु को तो काठ की पुतली की ओर भी नहीं देखना चाहिए, ऐसा शास्त्र-प्रमाण है। किन्तु वे तो स्त्रियों को अपने पास आने देते हैं, उनको दीक्षा देते हैं और स्त्रियाँ उनके आश्रम में भी रहती हैं। यदि आप राजा होकर भी कोई कदम न उठायेंगे तो धर्म के नाम पर बट्टा लग जायेगा।''

टिहरी के राजा ने अपने नौकर से कहा : ''इन साधुओं को पानी पिलाओ।''

नौकर ने आज्ञा का पालन किया। साधु पुनः बोले : ''इस ओमाश्रम के विषय में कुछ विचार करें।''

राजा बड़ा समझदार था, सच्चे संतों की महिमा जानता था। वह बोला : ''स्वामीजी ! आप तो बुजुर्ग साधु हैं, तपस्वी हैं। मैं तो संसारी आदमी हूँ। मैं तो जीवन में न जाने कितने पाप-ताप करता हूँ। मेरी इतनी क्षमता नहीं है कि साधुओं को दंड दूँ या साधुओं के बीच में मध्यस्थ होऊँ। ओमाश्रम कैसे भी हों, किन्तु मुझे उनके पास जाने से शांति मिलती है।''

साधु तो बोलते ही रहे किन्तु ओमाश्रम डरे नहीं। वे तो जैसे जीते थे वैसे ही जिये, क्योंकि वे वेदान्त की गहराइयों की यात्रा कर चुके थे।

संतों के यश से जलनेवाले उनकी निन्दा करते हैं, किन्तु बुद्धिमान लोग उनके बहकावे में नहीं आते। वे तो अपने अनुभव का आदर करते हुए संतों से लाभ उठाकर अपने जीवन को धन्य बना लेते हैं।

*

निन्दक नियरे राखिये...

अमरिका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन बड़े मानवतावादी थे। एक बार उनके साथियों ने कहा : ''आपको पता है कि आपका गृहमंत्री भरी सभा में आपके लिए कुछ-का-कुछ बोलता है। आपकी निन्दा करता है। आप राष्ट्रपति हैं तो उसे इतना ऊँचा पद क्यों दे दिया ? उसे हटा क्यों नहीं देते ?''

लिंकन : ''मुझे पता है। किन्तु वह इस पद के लायक है।''

''वह तो आपकी निन्दा करता है, आपको शक्की आदमी कहता है ?''

''मुझे सब पता है।''

''फिर भी आपने उसे इस पद पर रखा है ?''

''उसमें इस पद की योग्यता है। वह सोच-विचारकर निर्णय लेता है और किसीसे रिश्वत नहीं लेता। खुशामदखोरों के चक्कर में नहीं आता और अपने कर्तव्य का पालन ईमानदारी से करता है। वह मेरा विरोधी है, निन्दक है तो क्या बड़ी बात है ? राष्ट्र का तो हितैषी है, भक्त है।

हमें व्यक्ति की योग्यता की कदर करनी चाहिए, न कि अपने राग-द्वेष के वशीभूत होकर किसीकी योग्यता के साथ अन्याय करना चाहिए।''

काश ! दुनिया के दूसरे नेता भी यह जान लें तो मानवता का कितना कल्याण हो सकता है ! यह घटना आप नेता लोगों को सुनाया करें।

✲ जल हमारे काम आता है, वायु हमारे काम आती है और चैतन्यस्वरूप ईश्वर भी तो हमारे सारे कार्यों में ओतप्रोत हैं। उन्हींकी सत्ता तो काम आती है परन्तु बीच में व्यक्ति अपना अहंकार थोप देता है कि मैंने किया। निष्कामता से वह अहंकार गल जाता है तो परमात्मा अपने अंतःकरण में प्रकट हो जाते हैं।

✲ सत्त्वगुणी अपना हृदय खोलकर भगवान और गुरु के आगे रख देता है। रजोगुणी प्रभाव दिखाने की कोशिश करेगा। जितना-जितना आदमी ईमानदारी से हृदय खोलकर भगवान के आगे रखता है, उतना-उतना सुखी होता है। जितना कपट, उतना ही आदमी अशांत।

✲ निःस्वार्थता, लोभरहितता एवं निष्कामता मनुष्य को देवत्व प्रदान करते हैं, जबकि स्वार्थ और लोभ उसको मनुष्यता से हटाकर दानव जैसी दुःखदायी योनियों में भटकाते हैं। जहाँ स्वार्थ है वहाँ आदमी असुर हो जाता है, जबकि निःस्वार्थता और निष्कामता से उसमें सुरत्व जाग उठता है।

✲ मनुष्य ऐसा प्राणी है जो चाहे तो सुर हो जाय, चाहे असुर बन जाय और चाहे तो सुर-असुर दोनों में जिसकी सत्ता है उस सिद्धस्वरूप को पाकर जीवन्मुक्त बन जाय। यह मनुष्य के हाथ की बात है। वह अपने ही कर्मों से गुरुओं के अनुभव को अपना अनुभव बना सकता है और अपने ही कुकर्मों से कुदरत का कोपभाजन बनकर दैत्य, दानव और शूकर की योनियों में भटकने का मार्ग पकड़ सकता है। इसमें मनुष्य पूर्णतः स्वतंत्र है।

करम प्रधान बिस्व करि राखा।
जो जस करइ सो तस फलु चाखा॥

(श्रीरामचरित. अयो. का. : २१८.२)

✲ निःस्वार्थता से आदमी की अन्दर की आँखें खुलती हैं, जबकि स्वार्थीपन से आदमी की विवेक की आँखें मुँद जाती हैं। वह अंधा हो जाता है।

✲ आदमी जितना निःस्वार्थ कार्य करता है, उतना ही उसके सम्पर्क में आनेवालों का हित होता है और वह जितना स्वार्थी होता है, उतना ही अपने कुटुम्बियों व स्वयं की बर्बादी करता है।

✲ कोई निःस्वार्थ भाव से संतों की सेवा करता है और यदि वे संत कोई उच्च कोटि के महापुरुष हैं तो फिर उसके पुत्र-परिवार सभी को भगवान की भक्ति सुलभ-सुफल हो जाती है। भक्ति का फल प्राप्त कर लेना हँसी-मजाक नहीं है।

✲ निष्काम कर्म करनेवाले व्यक्तियों के कर्म भगवान या संत स्वीकार कर लेते हैं तो बदले में उसके कुल को भक्ति मिलती है। जिसके कुल को भक्ति मिलती है उसकी बराबरी कोई धनवान नहीं कर सकता। सत्तावाला भी भला उसकी क्या बराबरी करेगा ?

✲ निष्काम कर्म करनेवाला जो भी काम अपने जिम्मे लेता है, उसे पूरा करने में चाहे कितने ही विघ्न आ जायें, संघर्ष करना पड़े या निन्दा हो पर उसे पूरा करके ही चैन लेता है।

✲ जो स्वार्थांध बनकर निर्दोष पर जुल्म करता है, उसे प्रकृति तत्क्षण परिणाम दे देती है।

✲ स्वार्थ में अंधा होकर आदमी प्रायः कुकर्म कर बैठता है और जब उसे उसका फल मिलता है, तब वह पछताता है मगर बाद में पश्चात्ताप से क्या लाभ ? जो लोग स्वार्थभाव का त्याग कर ईश्वरप्राप्ति के उद्देश्य से कार्य करते हैं, वाहवाही को छोड़ भगवान को रिझाने के लिए कार्य करते हैं वे तर जाते हैं।

✲ चाहे जितनी भी ऊँचाई पर बढ़ जाओ मगर अंतःकरण में जब तक विभेद रहेगा, तब तक मुक्ति का अनुभव सम्भव नहीं, मोक्ष का सुख सुलभ नहीं हो सकता।

✲ हम लोग संसार का चिन्तन बहुत करते हैं, इसलिए भगवान पराया लगता है। जैसा चिन्तन करते हैं, वैसे ही हम बन जाते हैं।

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

महाशिवरात्रि व्रत

एक बार कैलास पर्वत पर पार्वतीजी ने भगवान शंकर से पूछा :

कर्मणा केन भगवन् व्रतेन तपसापि वा।
धर्मार्थकाममोक्षाणां हेतुस्त्वं परितुष्यसि॥

'हे भगवन् ! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इस चतुर्वर्ग के आप ही हेतु हैं। साधना से संतुष्ट हो आप ही इसे मनुष्य को प्रदान करते हैं। (अतः यह जानने की इच्छा होती है कि) किस कर्म, व्रत या तपस्या से आप प्रसन्न होते हैं ?'

भगवान शंकर ने कहा :

फाल्गुने कृष्णपक्षस्य या तिथिः स्याच्चतुर्दशी।
तस्यां या तामसी रात्रिः सोच्यते शिवरात्रिका॥
तत्रोपवासं कुर्वाणः प्रसादयति मां ध्रुवम्।
न स्नानेन न वस्त्रेण न धूपेन न चार्चया।
तुष्यामि न तथा पुष्पैर्यथा तत्रोपवासतः॥

'फाल्गुन (गुजरात-महाराष्ट्र में माघ) के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि को आश्रय करके जिस अंधकारमयी रजनी का उदय होता है, उसीको 'शिवरात्रि' कहते हैं। उस दिन जो उपवास करता है वह निश्चय ही मुझे संतुष्ट करता है। उस दिन उपवास करने पर मैं जैसा प्रसन्न होता हूँ, वैसा स्नान, वस्त्र, धूप और पुष्प के अर्पण से भी नहीं होता।'

'स्कन्द पुराण' में आता है :

परात्परतरं नास्ति शिवरात्रिपरात्परम्।
न पूजयति भक्त्येशं रुद्रं त्रिभुवनेश्वरम्।
जन्तुर्जन्मसहस्रेषु भ्रमते नात्र संशयः॥

'शिवरात्रि व्रत परात्पर है। जो जीव इस शिवरात्रि में महादेव की पूजा भक्तिपूर्वक नहीं करता, वह अवश्य सहस्रों वर्षों तक जन्मचक्रों में घूमता रहता है।'

सागरो यदि शुष्येत क्षीयते हिमवानपि।
मेरुमन्दरशैलाश्च श्रीशैलो विन्ध्य एव च।
चलन्त्येते तदाचिद्वै निश्चलं हि शिवव्रतम्॥

'चाहे सागर सूख जाय, हिमालय भी क्षय को प्राप्त हो जाय, मन्दर, विन्ध्यादि पर्वत भी विचलित हो जायें पर शिवव्रत कभी विचलित (निष्फल) नहीं हो सकता।'

'पद्म पुराण' में आता है :

सौरो वा वैष्णवो वान्यो देवतान्तरपूजकः।
न पूजाफलमाप्नोति शिवरात्रिबहिर्मुखः॥

'चाहे सूर्यदेव का उपासक हो, चाहे विष्णु का या अन्य किसी देव का, जो शिवरात्रि का व्रत नहीं करता उसको फल की प्राप्ति नहीं होती।'

'शिवरात्रि व्रत' का अर्थ है :

शिवस्य प्रिया रात्रिर्यस्मिन् व्रते अंगत्वेन विहिता तद्व्रतं शिवरात्र्याख्यम्।

'शिव की वह प्रिय (आनंदमयी) रात्रि, जिसके साथ व्रत का विशेष सम्बन्ध है वह व्रत 'शिवरात्रि व्रत' कहलाता है।

इस व्रत का प्रधान अंग उपवास ही है। फिर भी रात्रि के चार प्रहरों में चार बार पृथक्-पृथक् पूजा का विधान भी है।

दुग्धेन प्रथमे स्नानं दध्ना चैव द्वितीयके।
तृतीये तु तथाऽऽज्येन चतुर्थे मधुना तथा॥

'प्रथम प्रहर में दुग्ध द्वारा, द्वितीय प्रहर में दही द्वारा, तृतीय प्रहर में घृत द्वारा तथा चतुर्थ प्रहर में शहद द्वारा शिवमूर्ति को स्नान कराकर उनका पूजन करना चाहिए।'

प्रत्येक प्रहर में पूजन के समय निम्न मंत्र बोलकर प्रार्थना करनी चाहिए :

तव तत्त्वं न जानामि कीदृशोऽसि महेश्वरः।
यादृशोऽसि महादेव तादृशाय नमो नमः॥

'प्रभो ! हमारा कल्याण किसमें है और अकल्याण किसमें है, हम इसका निर्णय करने में

असमर्थ हैं। इस तत्त्व को समझने का सामर्थ्य हममें नहीं है। आप क्या हैं, कैसे हैं यह भी हम नहीं जानते। वेदशास्त्रों में आपके जिस स्वरूप, गुण, कर्म, स्वभाव का वर्णन है वह भी हम नहीं जानते। आप जो कुछ भी हों, जैसे भी हों, आपको प्रणाम हैं।'

प्रभातकाल में विसर्जन के बाद व्रत-कथा सुनकर अमावस्या को यह कहते हुए पारण करना चाहिए :

संसारक्लेशदग्धस्य व्रतेनानेन शंकर।
प्रसीद सुमुखो नाथ ज्ञानदृष्टिप्रदो भव॥

'हे भगवान शंकर ! मैं नित्य संसार की यातना से दग्ध हो रहा हूँ। इस व्रत से आप मुझ पर प्रसन्न हों। हे प्रभो ! संतुष्ट होकर आप मुझे ज्ञानदृष्टि प्रदान करो।'

शिवरात्रि में रात्रि-जागरण, बिलिपत्र-चंदन-पुष्प से शिव-पूजन, जप तथा ध्यान किया जाता है। यदि इस दिन 'बं-बं' बीजमंत्र का सवा लाख जप किया जाय तो जोड़ों के दर्द एवं वायुसम्बन्धी रोगों में लाभ होता है और भगवान शिव की प्रसन्नता प्राप्त होती है।

'ईशान संहिता' में आता है :

शिवरात्रिव्रतं नाम सर्वपापप्रणाशनम्।
आचाण्डालमनुष्याणां भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्॥

'महाशिवरात्रि व्रत सभी पापों का नाश करनेवाला है। इस व्रत के अधिकारी चाण्डाल तक सभी मनुष्य-प्राणी हैं, जिन्हें यह व्रत भुक्ति व मुक्ति दोनों ही प्रदान करता है।'

*

शिवभक्ति का महत्त्व

'शिव पुराण' की शतरुद्र संहिता में एक प्रसंग आता है :

विदर्भ देश के राजा का नाम था सत्यरथ। वे धर्म में तत्पर एवं शिवभक्त राजा थे। एक बार शाल्व देश के राजाओं ने विदर्भनरेश के राज्य पर चढ़ाई कर दी। इस युद्ध में विदर्भनरेश मारे गये। राजा के मरने पर सेना का हौसला पस्त हो गया और सेना भी भाग खड़ी हुई।

विदर्भनरेश की रानी किसी तरह जान बचाकर रातोंरात राजमहल से भाग गयी। उस समय वह गर्भवती थी। भगवान शिव का मन-ही-मन चिन्तन करते हुए वह पूर्व दिशा की ओर चल पड़ी। सवेरा होने पर एक सरोवर के किनारे छायादार वृक्ष के नीचे ही उसका प्रसव हो गया। दैववश उसे बड़ी प्यास लगी और वह पानी पीने के लिए सरोवर में उतरी। इतने में ही एक मगर ने उसे खा लिया।

नवजात शिशु, जिसका अभी नालछेदन भी नहीं हुआ था, उसका रक्षक कौन ? किन्तु ईश्वर की सृष्टि में बड़ी अद्भुत व्यवस्था है। भगवान शिव की प्रेरणा से एक गरीब ब्राह्मणी वहाँ से गुजरी। उसका पति मर चुका था और एक साल का नन्हा शिशु उसकी गोद में था। उसने देखा कि एक नवजात शिशु धरती पर पड़ा है। उसकी माँ भी नहीं दिखायी दे रही है और पिता आदि दूसरे सहायक भी नहीं दिखायी देते। वह सोचने लगी : 'न जाने यह किसका पुत्र है ? मैं इसे कैसे हाथ लगाऊँ ?'

इतने में भगवान शंकर एक संन्यासी का रूप लेकर वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने ब्राह्मणी से कहा : ''ब्राह्मणी ! अपने चित्त में संदेह को स्थान न दो। यह बालक परम पवित्र है। तुम इसे अपना ही पुत्र समझो और प्रेमपूर्वक इसका पालन करो।''

ब्राह्मणी : ''प्रभो ! मेरा सौभाग्य है कि आप यहाँ पधारे हैं। इसमें संदेह नहीं है कि मैं आपकी आज्ञा से इस बालक का अपने पुत्र की भाँति पालन-पोषण करूँगी, तथापि मैं जानना चाहती हूँ कि वास्तव में यह कौन है ? किसका पुत्र है और आप कौन हैं जो इस समय यहाँ पधारे हैं ?''

संन्यासी रूपधारी शिव ने कहा : ''ब्राह्मणी ! सुनो, यह बालक शिवभक्त विदर्भराज सत्यरथ का पुत्र है। सत्यरथ को शाल्वदेशीय राजाओं ने युद्ध में मार डाला है। उनकी पत्नी अत्यंत व्यग्र हो रात में शीघ्रतापूर्वक अपने महल से भागकर यहाँ आयी और सवेरे इस बालक को जन्म दिया। फिर वे प्यास से पीड़ित हो सरोवर में उतरी। उसी समय दैववश एक मगर ने उन्हें अपना आहार बना लिया।''

तत्पश्चात् संन्यासी वेशधारी भगवान शिव ने ब्राह्मणी को अपने वास्तविक स्वरूप में दर्शन दिये। ब्राह्मणी ने उन्हें प्रणाम किया और प्रेमपूर्वक स्तुति की। शिवजी अंतर्धान हो गये। ब्राह्मणी उस बालक को लेकर अपने पुत्र के साथ घर चली गयी एवं दोनों का पालन-पोषण करने लगी।

यथासमय दोनों का यज्ञोपवीत संस्कार हुआ। वे दोनों ही शिवजी की पूजा में बड़े तत्पर रहते थे। शांडिल्य मुनि के उपदेश से नियम-परायण होकर दोनों प्रदोषकाल में व्रत रखते थे और शंकरजी का पूजन करते थे।

एक दिन ब्राह्मणी का पुत्र अकेला ही नदी में स्नान करने चला गया। वहाँ उसे अशर्फियों से भरा एक सुन्दर कलश मिला। कलश लेकर वह घर आया एवं माँ से बोला : ''माँ ! माँ ! मुझे नदी-तट पर यह कलश मिला है।''

''बेटा ! तुम और तुम्हारा भाई, दोनों इसका उपयोग करो।''

राजकुमार ने कहा : ''माँ ! यह तो मेरे बड़े भाई का है। उन्हें मिला तो उनका ही हुआ। मेरे भाग्य में होगा तो मुझे अपने-आप मिलेगा। मैं इसमें से नहीं लूँगा।''

कुछ समय बाद वह राजकुमार वन में घूमने गया। दैववशात् वहाँ एक गंधर्वकन्या अंशुमति आ गयी। १६ वर्षीय तेजस्वी राजकुमार को देखकर उसका मन राजकुमार की तरफ आकर्षित हो गया। उसने अपनी सखियों को युक्ति से दूर भेज दिया एवं राजकुमार से बोली : ''मैं आपसे विवाह करना चाहती हूँ।''

राजकुमार : ''भले तुम गंधर्वकन्या हो, तुम्हारे में बल और सौन्दर्य ज्यादा है। फिर भी तुम पहले अपने पिता से सम्मति लो और मैं मेरी माता से सम्मति लूँ। तब विवाह होगा। मैं ऐसे ही विवाह नहीं करूँगा।''

अंशुमति ने अपने पिता से प्रार्थना की। गंधर्वराज राजकुमार के शील-संस्कार को सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने सत्यरथ के पुत्र के साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया।

राजकुमार धर्मगुप्त गंधर्वराज के दामाद बने और उनकी मदद से उसने अपना विदर्भ का खोया हुआ राज्य पुनः प्राप्त कर लिया। पालक माता उस समय राजमाता हुई और उसका पुत्र राजा के बड़े भाई के रूप में सम्मानित हुआ।

भगवान शिवजी की कृपा से राजकुमार ने न केवल अपना खोया हुआ राज्य पाया वरन् धर्म में भी अडिग रहा।

धर्म से वासना नियंत्रित होती है। वासना के नियंत्रण से बल-बुद्धि, ओज-तेज निखरते हैं।

वह ओजस्वी-तेजस्वी राजा चाटूकारों से प्रभावित नहीं होता था। साधु-संतों व उत्तम लोगों की सेवा राज्य का धर्म समझकर अपराधी और अमलदारों की मिली-भगत को उसने कुचल डाला था। स्वच्छ राज्य - स्वच्छ मति-गति की प्रजा और राजा इस नश्वर संसार को सत्य नहीं समझते थे। सुख-दुःख को सपना मानते थे। सदा सम रहनेवाले आत्मप्रतिष्ठित महापुरुषों का दैवी कार्य राजा और प्रजा, दोनों बड़ी चाह से करते थे और आत्मारामी संत उन्हें सत्य-सुख की अपनी धरोहर खुले दिल से बाँटते थे।

धर्मात्मा, संयमी राजा को पाकर प्रजा इस लोक और परलोक में विषयानंद, धर्मानंद तथा ध्यानानंद पाती हुई परमानंद को प्राप्त हुई। जैसे रामराज्य के समय प्रजा परमानंद की अधिकारी बन गयी थी, वैसे ही राजकुमार विदर्भनरेश के संयम तथा सत्पुरुषों के सत्संग-सान्निध्य से राजा एवं प्रजा का जीवन धन्य हुआ।

*

शिव-पार्वती का धर्म विषयक संवाद

हिमालय पर्वत पर परम धर्मात्मा देवाधिदेव भगवान शंकर से पार्वती देवी ने पूछा : 'भगवन् ! आप सम्पूर्ण भूतों के स्वामी और समस्त धर्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ हैं, कृपा कर मेरे संदेह का निवारण करें। धर्म का स्वरूप क्या है ? जो धर्म को नहीं जानते ऐसे मनुष्य उसका किस प्रकार आचरण कर सकते हैं ?

भगवान महेश्वर ने कहा :

अहिंसा सत्यवचनं सर्वभूतानुकम्पनम् ।
शमो दानं यथाशक्ति गार्हस्थ्यो धर्म उत्तमः ॥

(महा. अनु. पर्व : १४१.२५)

'देवी ! किसी भी जीव की हिंसा न करना, सत्य बोलना, सब प्राणियों पर दया करना, मन और इन्द्रियों पर काबू रखना तथा अपनी शक्ति के अनुसार दान देना - यह गृहस्थाश्रम का उत्तम धर्म है। उक्त गृहस्थ-धर्म का पालन करना, परायी स्त्री, पुरुष के संसर्ग से दूर रहना, बिना दिये किसीकी वस्तु न लेना तथा मांस और मदिरा को त्याग देना - ये धर्म के पाँच भेद हैं जिनसे सुख की प्राप्ति होती है। धर्म को श्रेष्ठ माननेवाले मनुष्यों को इन पुण्यप्रद धर्मों का अवश्य पालन करना चाहिए।

पार्वती ने पूछा : 'भगवन् ! मनुष्य कैसे कर्म से बँधते, मुक्त होते अथवा स्वर्ग में जाते हैं ?'

महेश्वर ने कहा : 'देवि ! जो मनुष्य धर्म से उपार्जित किये हुए धन को भोगते और सत्यधर्म में परायण रहते हैं, वे स्वर्ग में जाते हैं। जिनके सब प्रकार के संदेह दूर हो गये हैं, जो प्रलय और उत्पत्ति के तत्त्व को जाननेवाले, सर्वज्ञ और सर्वद्रष्टा हैं, जिनकी आसक्ति दूर हो गयी है तथा जो मन, वाणी और कर्म से किसी जीव की हिंसा नहीं करते, वे ही पुरुष कर्मबंधनों से मुक्त होते हैं। उन्हें न धर्म बाँधता है न अधर्म। जो कहीं आसक्त नहीं होते, किसीकी हत्या से दूर रहते हैं तथा जो सुशील और दयालु हैं, वे ही कर्मों के बंधन में नहीं पड़ते। जो शत्रु और मित्र को समान समझनेवाले हैं, वे जितेन्द्रिय पुरुष कर्मबंधन से मुक्त हो जाते हैं। जो सब प्राणियों पर दया करनेवाले, सबके विश्वासपात्र तथा हिंसामय आचरणों को त्याग देनेवाले हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। जो दूसरों के धन पर ममता नहीं रखते, परायी स्त्री से सदा दूर रहते और धर्म के द्वारा प्राप्त किये हुए अन्न का ही भोजन करते हैं, जिसका दूसरों की स्त्रियों के प्रति माता, बहिन और बेटी के समान भाव रहता है, जो सदा अपने धन से संतुष्ट रहकर चोरी आदि से अलग रहते हैं, जिन्हें सदा अपने भाग्य का ही भरोसा रहता है, जो अपनी ही स्त्री से संतुष्ट रहते, ऋतुकाल में ही स्त्री-समागम करते और संसारी सुख-भोगों में लिप्त नहीं होते, जो अपनी सच्चरित्रता के कारण परस्त्रियों की ओर आँख उठाकर देखते तक नहीं, जिनकी इन्द्रियाँ काबू में रहती हैं तथा जो शील को ही श्रेष्ठ समझकर उसमें स्थित रहते हैं, वे मनुष्य स्वर्ग में जाते हैं। यह देवताओं का बनाया हुआ मार्ग है। राग और द्वेष को दूर करने के लिए इस मार्ग की प्रवृत्ति हुई है। यह मार्ग दान, धर्म और तपस्या से युक्त है। शील, शौच और दया इसका स्वरूप है। मनुष्य को जीविका, धर्म एवं आत्मोद्धार के लिए सदा ही इस मार्ग का आश्रय लेना चाहिए, क्योंकि निष्कामभाव से सेवन किया हुआ धर्म परम कल्याणकारक होता है।'

पार्वती ने पूछा : 'भूतनाथ ! कैसी वाणी बोलने से मनुष्य बंधन से छुटकारा पाता है ?'

महेश्वर ने कहा : 'जो मनुष्य अपने या दूसरे के लिए हँसी-परिहास में भी झूठ नहीं बोलते, आजीविका, धर्म अथवा किसी कामना के लिए असत्य भाषण नहीं करते, जिनकी वाणी मन को प्रिय लगनेवाली, किसीको दुःख न पहुँचानेवाली, पापपूर्ण विचारों से रहित तथा स्वागत-सत्कार के भाव से युक्त रहती है तथा जो कभी रूखी, कड़वी और निष्ठुरतापूर्ण बात मुँह से नहीं निकालते, वे सज्जन पुरुष स्वर्ग में जाते हैं। जो मनुष्य दूसरों से तीखी बात बोलना और द्रोह करना छोड़ देते हैं, सब प्राणियों को समान भाव से देखते और इन्द्रियों को वश में रखते हैं, जिनके मुँह से कभी शठतापूर्ण बात नहीं निकलती, जो विरोधयुक्त वाणी का परित्याग करते हैं तथा क्रोध में आने पर भी जिनके मुँह से हृदय को विदीर्ण करनेवाली बात नहीं निकलती - जो उस समय भी सान्त्वनापूर्ण वचन ही बोलते हैं, वे स्वर्ग को प्राप्त होते हैं। *(महाभारत, अनु. पर्व)*

महत्त्वपूर्ण निवेदन : सदस्यों के डाक-पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा। जो सदस्य १२४वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया फरवरी २००३ के अंत तक अपना नया पता भेज दें।

ॐ ब्रह्म उत्पत्ति, ॐ किया जिन चित्त।
ॐ सेल जुग भये, ओंकार वेद निरमय।
ॐ शब्द जप रे, ओंकार गुरुमुख तेरे।
ॐ अखर सुनहु विचार, ॐ अखर त्रिभुवन सार।
प्रणवो आदि एक ओंकारा, जल थल महिथल कियो पसारा।

यजुर्वेद (४०.१५) में मानव-कल्याण के लिए आदेश है : **ॐ क्रतो स्मर।** 'हे कर्मशील ! ओंकार का स्मरण कर।', क्योंकि ॐ ही सबका सहारा है । **उद्‌गीथ उपाक्षयः** । (अथर्ववेद : १५.३.६) 'ओंकार टेक (सहारा) है।' यजुर्वेद (२.१३) में यही आदेश है : **ॐ प्रतिष्ठ।** 'ॐ पर निश्चय रख।'

भारतीयों के लिए तो वेद का आदेश ही पर्याप्त है। वेदों के अतिरिक्त अनेक शास्त्रों में भी ॐ के निजनाम को दर्शाया गया है। 'गोपथ ब्राह्मण' के पूर्व भाग के प्रथम प्रपाठक की ३०वीं कण्डिका में ॐ के विषय में प्रश्न होने पर यह बतलाया गया है : **आत्मभेषज्य आत्मकैवल्यः ओंकारः।** 'ओंकार आत्मा की चिकित्सा और आत्मा को मुक्ति देनेवाला है। 'गोपथ ब्राह्मण' में ही उत्तर भाग के तीसरे प्रपाठक की ११वीं कण्डिका में यह आदेश है : **अमृतं वै प्रणवः, अमृतैनैव तन्यमृत्यूम चरित। तत्रया मेत्रेन वा वंशेन वा गतं संक्रमेत एवं तत्प्रणवेनो प्रसन्न नीतिः प्रणवः।** 'ओंकार जीवन है। जीवन ओंकार के द्वारा मृत्यु को पार करता है। जैसे बाँस के द्वारा खड्डे को लाँघा जाता है, ऐसे ही ओंकार सेतु (पुल) बनता है।

'ॐ' ही भवसागर से पार लगानेवाला है, मानव-जीवन का आदि और अन्त यही है। शास्त्रों में ऐसा विधान है : परिवार में बालक-बालिका का जन्म होने पर सूर्यपूजन के पश्चात् सोने की कलम से शहद और घी के विमिश्रण की स्याही बनाकर उससे शिशु की जीभ पर 'ॐ' लिखो। अर्थात् जन्मकाल से ही मनुष्य को आदेश मिल गया कि तेरी वाणी में सदा 'ॐ' रहे। यही तेरे जीवन का सहारा है और मृत्यु के समय भी वेद ने यही आदेश दिया : **ॐ क्रतो स्मर।** 'हे कर्मशील ! ॐ का स्मरण कर।'

'ॐ' ईश्वर-वाचक, सर्वश्रेष्ठ, सर्वाधिक सम्पन्न एवं शक्तिशाली नाम है। यह एक ऐसा बीजमंत्र है जो अखिल ब्रह्माण्ड को स्वयं में ही समाहित किये हुए है। उपनिषदों में आता है :

ओंकारप्रभवा देवा ओंकारप्रभवाः स्वराः।
ओंकारप्रभवं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥

यह जितना लघु दिखता है उतना ही अधिक प्रभावशाली है। 'ॐ' शब्द उस सुन्दर वृक्ष के समान है, जिसकी ठंडी छाया में विश्व का प्रत्येक प्राणी बिना किसी भेदभाव के आश्रय पाकर अपने तन-मन को शीतल कर सकता है। विश्व का प्रत्येक प्राणी इस शब्द से स्वयं को आध्यात्मिक व भौतिक विभूतियों से विभूषित करके सुखी हो सकता है। यह सभी मंत्रों को अपनी शक्ति से प्रभावित करता है। 'ओंकार' साधना से इतना आत्मबल प्राप्त होता है कि जीवन-उत्थान एक सरल कार्य हो जाता है। इसका ध्यान करने से मन पवित्र होता है, बुद्धि शुद्ध रहती है और दुःखों का निवारण होता है।

ओंकार बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव ओंकाराय नमो नमः ॥

'ॐ' का जप करने से देवदर्शन, लौकिक कामनाओं की पूर्ति, आध्यात्मिक चेतना में वृद्धि, साधक की ऊर्जा एवं क्षमता में दिव्यता तथा परमात्मा की प्राप्ति होती है। इसे श्रेष्ठतम, महानतम एवं पवित्रतम मंत्र की संज्ञा दी गयी है। 'ॐ' का हमारे जीवन में बहुत महत्त्व है। यह हमारे जीवन का रक्षक है। इसे विश्व-ब्रह्माण्ड का सूक्ष्म प्रतिरूप कहा जाता है। मंत्रों के आदि ग्रंथ ऋग्वेद में सर्वाधिक मान्यता इसी 'ॐ' को दी गयी है। ओंकार महामंत्र सिद्धि और शक्तिदाता है। मंदिरों

की शंखध्वनि भी 'ॐ' के सदृश ही होती है। अद्वैतवादी नाद-साधना में ओंकार की ध्वनि को प्रमुख मानते हैं। इसी 'ओंकार' साधना के समतुल्य ही 'सोऽहं' साधना है।

सोऽहं में बीजरूप ओंकार छिपा हुआ है। मंत्र-शास्त्र की उक्ति **मंत्राणां प्रणवः सेतु।** का आशय यही है कि प्रणवरूपी सेतु के द्वारा मंत्र-महासागर को सरलता से पार किया जा सकता है। ओंकार ब्रह्मलीनता का बोधक, समाधि एवं मुक्ति की अवस्था में पहुँचाने में समर्थ एवं वैज्ञानिक चमत्कारों का प्रतीक है।

ओंकारः सर्व मंत्राणामुत्तमः परिकीर्तितः।
ओंकारेण प्लवैनैव संसाराब्धिं तरिस्यसि॥

'सभी मंत्रों में ओंकार उत्तम कहा गया है। ओंकाररूपी नौका के द्वारा ही संसार-सागर तर सकते हो।'

वेदों ने घोषणा की है कि जो मृत्यु के भय से छूटना चाहता है वह ओंकार की उपासना करे। काम, क्रोध आदि षड्रिपुओं को ओंकार की गदा से मार भगायें। ओंकार भयनाशक और सामर्थ्य-प्रदायक है। ओंकार के विषय में माण्डुक्य उपनिषद में आता है :

'ओंकार की प्रथम मात्रा 'अ' यह आप्ति (प्राप्त होना) और अनादिता का प्रतिक है, द्वितीय मात्रा 'उ' उत्कर्ष का प्रतीक है, तृतीय मात्रा 'म' यह मिती (देश, काल, वस्तु आदि का आकलन) और अपिति (समग्र विश्व को व्याप्त करने की क्षमता) का प्रतीक है। इस प्रकार उपर्युक्त सभी शक्तियाँ ओंकार के जाप से जापक को मिलती हैं।

ओंकार को 'प्रणव' और 'उद्गीथ' कहा गया है। प्रणव = प्र + 'नु' धातु

प्रणव का अर्थ होता है उत्तम प्रकार की स्तुति अथवा उत्तम स्तोत्र। उत्तम-से-उत्तम तो केवल परब्रह्म ही है। अतः प्रणव का अर्थ हुआ परब्रह्म की स्तुति। इसीलिए शास्त्रों में कहा गया है **'तस्य वाचकः प्रणवः।'** (पातं. योग. : १.२७)

उद्गीथ = उत् + 'गै' धातु

'गै' धातु का अर्थ है गाना। उत् उपसर्ग के कारण उद्गीथ का अर्थ हुआ उत्तम गीत अर्थात् परब्रह्म के स्तवन हेतु गाया हुआ गीत।

भगवान श्रीकृष्ण ने भी गीता में कहा है **प्रणवः सर्ववेदेषु...** 'सम्पूर्ण वेदों में मैं ओंकार हूँ।' (गीता : ७.८)। यहाँ पर भगवान ने ओंकार को अपना ही स्वरूप बताया है। वे आगे कहते हैं :

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥

'जो पुरुष 'ॐ' इस एक अक्षररूप ब्रह्म को उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थस्वरूप मुझ निर्गुण ब्रह्म का चिन्तन करता हुआ शरीर को त्याग कर जाता है, वह पुरुष परम गति को प्राप्त होता है।' (गीता : ८.१३)

ॐ : सब ध्वनियों का स्रोत

सब पदार्थों का ज्ञान ध्वनियों द्वारा होता है। सभी ध्वनियाँ ओंकार में लय हो जाती हैं। वाणी अथवा शब्दसमूह का अंत भी एक ॐ में लय हो जाता है।

सब ध्वनियों का उद्गमस्थान ॐ ही तो है। नवजात शिशु का 'उँवाँ... उँवाँ...' रुदन, मक्खियों की भिनभिनाहट, घोड़ों की हिनहिनाहट, नागों की फुँफकार, वक्ता के भाषण पर श्रोताओं की तालियों की गड़गड़ाहट, मृदंग तथा नगाड़े की थाप, सिंह की दहाड़, रोगियों की कराह, वंशी की सुमधुर ध्वनि, बुलबुल पक्षी का मधुर गान, संगीत में 'राग' के सातों स्वर तथा प्रेमी के हृदयस्पर्शी गीत के स्वर - ये सब ॐ से ही निःसृत हुए हैं।

गंगा की कलकल ध्वनि, मंडी बाजार का कोलाहल, इंजन के पहिये के चलने की झनझनाहट, वर्षा की बूँदों की टपटप आदि सब ॐ के ही विभिन्न रूप हैं।

ॐ ही सब अक्षरों का आधार है। ॐ के तीन स्वर हैं : अ-उ-म। इन अ-उ-म में सभी कंपन समा जाते हैं।

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

आखिरी शिक्षा

प्राचीन काल की बात है :

एक राजा अपने पुत्र की गुरुकुल की शिक्षा पूरी होने के समय उसे लेने गुरुकुल पहुँचे । वहाँ पहुँचकर राजा ने गुरुचरणों में बड़ी श्रद्धा-भक्ति से दक्षिणा रखी एवं अपने आने का हेतु बताया।

राजकुमार ने जाने से पूर्व गुरुचरणों में प्रणाम किया। तब गुरुदेव ने उसका कान पकड़कर उसके गाल पर एक जोरदार चपत लगा दी। फिर गुरुदेव ने राजा की ओर देखा तो राजा का मुँह उतरा हुआ था।

राजा के मनोभावों को गुरुदेव ताड़ गये एवं बोले : ''क्यों राजन् ! कुछ पूछना चाहते हो ?''

''हाँ, गुरुदेव ! मेरे मन में रह-रहकर यह प्रश्न उठ रहा है कि आखिर राजकुमार को बिना किसी गलती के आपने इतनी जोर-से थप्पड़ क्यों मारा ?''

''राजन् ! मैंने इसे अपनी गुरुकुल की विद्या का यह आखिरी पाठ पढ़ाया है।''

राजा चौंक उठा : ''आखिरी पाठ ! मैं आपकी इस आखिरी शिक्षा को, इसके गूढ़ अर्थ को समझ नहीं पा रहा हूँ, गुरुदेव !''

''राजन् ! अब यह यहाँ से जा रहा है । यह राजकुमार है, अतः भविष्य में राज्य सँभालेगा। राज्य में केवल सज्जन लोग ही होते हैं ऐसी बात नहीं है। दुष्ट और दुर्जन लोग भी होते हैं। चोर, डाकू, लुटेरे एवं आततायी भी होते हैं। योग्य राजा वही है जो दुष्टों का दमन करे एवं सज्जनों की रक्षा करे।

राजा प्रजा के लिए पिता के समान होता है। प्रजा का पालन करना उसका प्रमुख कर्तव्य है। कहीं ऐसा न हो कि राग-द्वेष के वशीभूत होकर राज्य के अधिकारी किसी निर्दोष को धर दबोचें एवं उसे सजा दिलवाने का षड्यंत्र रचें। जब वह न्याय पाने के लिए इसके सम्मुख आयेगा तब इसको मेरी यह आखिरी शिक्षा याद रहेगी और यह दस बार विचार करके फिर ही न्याय देगा। निर्दोष-सज्जन को दंड देने से पहले इसे मेरा थप्पड़ याद आ जायेगा और यह सही न्याय दे पायेगा। यही मेरी आखिरी शिक्षा का रहस्य है। राजन् ! अब आप इसे ले जा सकते हैं।''

गुरुदेव की आखिरी शिक्षा के गूढ़ रहस्य को सुनकर राजा अभिभूत हो उठा एवं उनके श्रीचरणों में गिर पड़ा।

कैसी थी प्राचीन गुरुकुलों की शिक्षा ! कैसे थे प्राचीन शिक्षक और विद्यार्थी !! उस समय केवल किताबी पढ़ाई ही नहीं, बल्कि उसके साथ व्यावहारिक जीवन की शिक्षा भी विद्यार्थियों को दी जाती थी। शिष्य भी विनम्र, सदाचारी, तत्पर एवं अपने गुरु के प्रति निष्ठावान हुआ करते थे।

आज के शिक्षक एवं विद्यार्थी भी वैसे बन पायें तो वह दिन दूर नहीं कि भारत अपनी खोयी हुई गरिमा को पुनः प्राप्त करके उन्नति के उच्च शिखर पर आरूढ़ हो जाय।

✲

जहाँ कोई न देखे ऐसी जगह

दक्षिण भारत में मथुरदास नाम के एक संत रहते थे। उन्हें अपने एक शिष्य से खूब स्नेह था। अतः उनके दूसरे शिष्यों को ईर्ष्या होती थी। एक दिन उन संत ने अपने शिष्यों का भ्रम मिटाने के लिए एक प्रयोग किया। उन्होंने सब शिष्यों को अपने पास बुलाकर कहा : ''आज एकादशी है, व्रत-उपवास का दिन है। मैं तुम्हें एक-एक केला देता हूँ। जहाँ तुम्हें खाते हुए कोई न देखे, ऐसी जगह पर तुम इन्हें खाकर आ जाओ।''

सब शिष्य गुरु-आज्ञा पाकर एकांत में चले गये। जहाँ उन्हें कोई न देख रहा हो, ऐसी जगह पर केले खाकर आ गये लेकिन गुरु का वह प्रिय शिष्य केला लेकर वापस आया एवं बोला :

''गुरुदेव ! आपने कहा था कि जहाँ कोई न देखे ऐसी जगह पर खाकर आना। किन्तु ऐसी तो कोई जगह नहीं दिखी, जहाँ कोई न हो। सर्वत्र वासुदेवरूप से आप ही तो स्थित हैं, अतः आपको धोखा देकर मैं केला कैसे खा सकता हूँ ?''

जब अन्य शिष्यों को इस बात का पता चला, तब उन्हें लगा कि गुरुदेव के ज्ञान को केवल इसी शिष्य ने ठीक से हजम किया है और इसीलिए यह गुरु का कृपापात्र शिष्य बन पाया है। सबका भ्रम मिट गया एवं सबने गुरुदेव से क्षमा माँगी।

रस के तीन प्रकार

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

भगवान में मन नहीं लगता हो तो क्या करना चाहिए ? - जिनका भगवान में मन लगा हो उनका संग करना चाहिए।

'संग तो करते हैं किन्तु अभी रस नहीं आता...'

रस कितने प्रकार के होते हैं ? अवांतर भेद से तो रस के कई प्रकार हैं किन्तु इसके मुख्य तीन प्रकार मान सकते हैं : (१) प्रमाद रस (२) विषय रस (३) भगवद्रस।

(१) प्रमाद रस : यह वह रस है जो पामर व्यक्तियों को आता है। प्रमाद किसको बोलते हैं ? जो करना चाहिए वह नहीं करते और जो नहीं करना चाहिए उसे करने में मजा आता है, यह है प्रमाद। जैसे, शराब पीना, मांस खाना स्वास्थ्य के लिए हितकारी नहीं है किन्तु उसमें मजा आता है। हुल्लड़ करना, गोधराकाण्ड करना, लोगों को जिंदा जलाना, ...तो जलानेवालों को रस आता होगा... यह प्रमाद रस है। अपने पैसे लगाकर भी समाज में अशांति पैदा करते हैं ऐसे पामर लोग ! श्रीकृष्ण की भाषा में कहें तो ऐसे लोग **आसुरं भावमाश्रिताः** हैं। आसुरी भाव का आश्रय लेनेवाले लोगों में न करने योग्य कार्यों में करणीय बुद्धि और करने योग्य कार्यों में अकरणीय बुद्धि अथवा लापरवाही होती है।

तीन प्रकार के लोग होते हैं : (१) आसुरी स्वभाव के (२) राक्षसी स्वभाव के (३) मोहिनी स्वभाव के।

आसुरी स्वभाव के लोग वे होते हैं जो अपना

काम पूरा करने के लिए चाहे दूसरे का नुकसान भी करना पड़े तो कर लेंगे। राक्षसी स्वभाव के वे होते हैं जो अपनी वासनापूर्ति के लिए कुछ भी करने को तैयार हो जाते हैं, फिर चाहे उन्हें भी नुकसान उठाना पड़े। रावण को मंदोदरी ने समझाया, विभीषण ने समझाया कि सीता को लौटा देने में ही राक्षसकुल की भलाई है, किन्तु उसने नहीं माना इसीलिए रावण को राक्षस कहा है। मोहिनी स्वभाव के वे होते हैं जिनको कुछ लेना-देना नहीं होता, फिर भी किसीको सताकर मजा लेते हैं। जैसे- पक्षी डाल पर बैठा किल्लोल कर रहा है तो उसे पत्थर मार दिया, कुत्ते को डंडा मार दिया, माता-पिता अथवा पड़ोसी सोया है और परेशान करने लगे - यह मोहिनी स्वभाव है।

किसीका मजाक उड़ाना कि 'ये तो सीतारामवाले हैं या ये तो अल्लाहवाले हैं!' मुसलमानों में भी कई अच्छे लोग होते हैं, ईसाइयों में भी कई अच्छे लोग होते हैं कि 'धर्मान्तरण क्या करवाना ? जो फूल जहाँ है उसे वहीं खिलने दो।' किन्तु कुछ तो ऐसे होते हैं कि हनुमानजी के लिए कुछ-का-कुछ बकेंगे, गीता के लिए न बोलने जैसा बोलेंगे और लोगों की बुद्धि भ्रमित करके धर्मान्तरण करवाकर मजा लेंगे। ये राक्षसी और मोहिनी स्वभाव के लक्षण हैं।

शराब पीना, मांस खाना, झगड़े करना-करवाना - ये सब हलकी मति के लोगों को अच्छा लगता है। वे संध्या, प्राणायाम, ध्यान आदि नहीं करेंगे, ईमानदारी से परोपकार नहीं करेंगे किन्तु परोपकार का जामा पहनकर दूसरों का धर्मान्तरण करेंगे- इसको बोलते हैं प्रमाद रस।

इस प्रमाद रस में एक-दो नहीं, लाख-दो लाख नहीं, करोड़ों लोग फँसे हैं। मरने के बाद ऐसे लोग पेड़-पौधे, जीव-जंतु अथवा प्रेत होते हैं।

(२) विषय रस : ठीक से खाया-पीया, ठीक से रहे, हम भी सुखी तुम भी सुखी, अपना भी भला दूसरे का भी भला। इधर तो सुखी रहें मरने के बाद भी सुखी रहें- यह है विषय रस। विषय रस को चाहनेवाला जो कुछ करेगा सुख पाने के लिए करेगा। उसे लड़ाई-झगड़ा पसंद नहीं होता। कहीं कोई परेशानी आयी तो झगड़े का दिखावा करके अपना काम निकाल लेगा, फिर सुलह भी कर लेगा, वह वैर नहीं रखेगा। प्रमाद रसवाला तो बड़ा वैर रखेगा और मौका ढूँढ़ेगा। विषयी ऐसा मौका कम ढूँढ़ता है। वह तो देखने, चखने, सूँघने आदि विषयों के रस को पाने में ही लगा रहता है।

(३) भगवद्रस : घर में खाने-पीने, ओढ़ने-पहनने को सब साधन-सुविधा है किन्तु आखिर यह सब करके भी दिन-प्रतिदिन आयुष्य ही तो नष्ट हो रहा है। ऐसी कौन-सी चीज है जो शाश्वत है ? वह तो भगवान है, आत्मा है। आत्मरस, भगवद्रस पाने के लिए जो कमर कसता है वही भगवद्रस को पा लेता है।

विषयी ऊँची-नीची योनियों में भटकता है, पामर सीधा नीची योनियों में जाता है। विषयी स्वर्ग भी भोग लेगा फिर मनुष्य होगा, परन्तु पामर तो पेड़-पौधे, कीट-पतंग आदि की योनियों में जायेगा। विषय रस समाज के धनवान लोगों के पास होता है और समाज की सारी सुन्दर व्यवस्था भगवद्रसवाले को भले ही मिल जाय, फिर भी उसको अंदर खटकता है कि **'आखिर कब तक ?'**

ऐसा जिसको विवेक हो जाता है वह परमात्मा के रास्ते चल पड़ता है। वैसे तो विषयी भी परमात्मा के रास्ते चलते हैं किन्तु भगवान से भी वे यही माँगते हैं कि 'मेरा बेटा पास हो जाय... मेरा मुकदमा सुलझ जाय... मेरी बढ़ती हो जाय... मेरे दुश्मन का नाश हो जाय...।' वे भगवान के भक्त नहीं हैं। यदि थोड़ी-बहुत भक्ति करते भी हैं तो विषय रस को पाने के लिए, भगवान को पाने के लिए नहीं।

''बापूजी ! कृपा कर दो, मैं यह कर लूँ - वह कर लूँ, धन-दौलत कमा लूँ।''

''फिर क्या करेगा, भाई !''

''फिर अच्छे काम में लगाऊँगा।''

''हमें कोई जरूरत नहीं है। तुम केवल भगवद्रस की ओर आ जाओ, भैया !''

भगवद्रस को पाने के लिए विषय रस को छोड़ो। अच्छे काम में क्या लगाना है ? तुम अगर

भगवद्रस के रास्ते पर आ जाते हो तो बाकी का सब व्यवस्थित होता रहता है। ईश्वर को पाने के रास्ते पर चल रहे हो तो फिर कमायेंगे और अच्छे काम में लगायेंगे - इस बात को छोड़ दो। जितना है उसको ठीक-ठाक करके बाकी का समय ईश्वर को पाने में लगाओ। कमा-कमाकर दान करने से तुम अपना और समाज का इतना भला नहीं कर सकते जितना भगवद्रस पाकर भला कर सकते हो।

जिसको भगवद्रस का थोड़ा भी अहसास हुआ है, उसको संसार के छोटे-मोटे दुःख हिला नहीं सकते और छोटे-मोटे आकर्षण खींच नहीं सकते।

''भगवद्रस नहीं मिलता तो क्या करें ?''

''भगवज्जनों का संग। भगवज्जनों के अनुभव-सम्पन्न वचन दूसरों के हृदय में भी भगवद्रस उत्पन्न कर देते हैं।''

''परन्तु हमको तो ऐसा नहीं होता, भगवद्रस नहीं मिलता।''

भगवद्रस नहीं मिलता क्योंकि सत्संग सहित साधन तीव्र नहीं है और कुसंग बहुत अधिक है। तुम प्रमाद रस और विषय रस को महत्त्व देते हो इसलिए भगवद्रस की सुरक्षा नहीं होती। जैसे, बीज बोने के बाद ध्यान नहीं देते तो पौधों की सुरक्षा नहीं होती, पौधे मुरझा जाते हैं। पेड़ बड़ा होने तक उसका ध्यान रखना पड़ता है। ऐसे ही भगवद्रस में जब तक निष्ठा न बढ़ जाय, भगवद्रस में जब तक स्थिति न हो जाय तब तक उसकी सुरक्षा करनी चाहिए।

साधकों को चाहिए कि खान-पान, बातचीत आदि में सावधानी रखें। प्याज, लहसुन, मांस, शराब, बाजारू शीतपेय जैसे अशुद्ध आहार से बचें। प्रदोषकाल में भोजन न करें। संध्या के समय, देर रात्रि में एवं एकादशी के दिन भोजन न करें। हलके परमाणुवाले व्यक्तियों से सँभलकर व्यवहार करें। उनके परमाणु अपने में न आने दें।

तुलसीदासजी ने कहा है :

सुमति कुमति सबके उर रहहिं।
वेद पुरान निगम अस कहहिं ॥

अच्छाई-बुराई के संस्कार सभी में रहते हैं अर्थात् प्रमाद रस, विषय रस एवं भगवद्रस के संस्कार सभी के अंदर हैं, क्योंकि भगवत्सत्ता सभी में है। सब चाहते हैं कि हम सदा सुखी रहें और बिना मेहनत के सुखी रहें। बिना मेहनत का और सदा रहनेवाला तो भगवत्सुख है। बाकी के सब सुख पाने के लिए मेहनत चाहिए।

जीव को सच्चा सुख नहीं मिलता इसीलिए वह हलके रस के लिए लालायित होता है। हलका रस ले-लेकर हलकी आदत पड़ गयी है। इस हलकी आदत को मिटाने के लिए अच्छी आदत डालो। सत्संग, जप, ध्यान, प्राणायाम आदि की आदत डालो ताकि हलकी आदत मिट जाय। हलकी आदत मिटने पर भगवद्रस आने लगता है।

भगवद्रस के भी तीन भेद होते हैं : (१) भक्तिप्रधान रस (२) ज्ञानप्रधान रस (३) कर्म प्रधान रस। रस तो वही परमात्मा का है लेकिन किसीको भक्ति के द्वारा, किसीको तत्त्वज्ञान के द्वारा तो किसीको निष्काम सत्कर्म के द्वारा प्राप्त होता है।

जो विचारप्रधान हैं उनको तत्त्वज्ञान के द्वारा वह रस आयेगा, जैसे- रमण महर्षि। जो भक्तिप्रधान हैं उनको भक्ति के द्वारा रस आयेगा, जैसे- मीराबाई। जो कर्मप्रधान हैं उनको सेवा के द्वारा वही रस आयेगा, जैसे- शबरी भीलन, बाल गंगाधर तिलक, महात्मा गाँधी, विनोबा भावे।

भगवद्रस का अभ्यास करते-करते जीव भगवद्रसमय हो जाता है। रस लेनेवाला और भगवद्रस दो नहीं रहते। ऐसे महान पुण्यात्माओं के दर्शन-सत्संग को पानेवाला भी भगवद्रस से आनंदित होने लगता है।

विचार बिंदु

* *अपने स्वभाव पर विजय पाना ही बहादुरी है।*
* *शुद्ध आचरणयुक्त निःस्वार्थ प्रेम में बड़ा बल होता है।*
* *दूसरों की अवनति या बुराई चाहने से अपनी उन्नति या भलाई नहीं हो सकती।*

नाभि में कमल !

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

विशुद्धानंदजी सरस्वती सूर्यविज्ञान के प्रणेता माने जाते हैं । उनके जीवन में कई ऐसे प्रसंग बने जिनको आज का मानव शायद ही सच समझे । किन्तु योग एवं अध्यात्म में इतना सामर्थ्य है कि असंभव को भी संभव कर दिखाये । विशुद्धानंदजी के ऐसे ही जीवन-प्रसंगों में से कुछ यहाँ दिये जा रहे हैं ।

सन् १९१९-२० के आस-पास की घटना है :

विशुद्धानंदजी सरस्वती पुरी में विराजमान थे । एक दिन उन्होंने कहा : ''शास्त्रों में जो कुछ भी लिखा है वह अक्षरशः सत्य है ।''

वहाँ के राजपण्डित सदाशिव मिश्र ने संशय प्रकट करते हुए कहा : ''विष्णु भगवान की नाभि से कमल निकला और उस पर ब्रह्माजी प्रकट हुए । यह बात मुझे तो असंभव और केवल गप्प लगती है । इस पर तो मैं तभी विश्वास कर सकता हूँ जब अपनी आँखों से इन्हें प्रत्यक्ष देख लूँ ।''

विशुद्धानंदजी यह सुनकर मुस्कराये । तीन-चार दिन बाद विशुद्धानंदजी ने पलंग पर लेट-लेटे अपने पेट को ऊपर-नीचे करके अंदर की ओर खींचा । देखते-ही-देखते नाभि से कमल के फूल सहित डंडी निकली तथा धीरे-धीरे बढ़ने लगी और कुछ ही समय में कई फुट ऊँची हो गयी । कमल का फूल भी बड़ा हो गया !

विशुद्धानंदजी : ''अभी सूर्य का प्रकाश कम है, नहीं तो कमल की डंडी छत तक पहुँच सकती थी । आप लोग ब्रह्माजी के दर्शन के अधिकारी नहीं हो, नहीं तो मैं कमल के पुष्प पर ब्रह्माजी को भी ला बिठाता ।''

✻

एक दिन झाल्दा के राजा श्री उद्धवनारायण ने विशुद्धानंदजी से कहा : ''बाबा ! वेदव्यासजी महाराज ने लिखा है कि महाभारत में अग्निबाण तथा वायुबाण का प्रयोग किया गया था । क्या यह बात सच है ?''

बाबा : ''हाँ, बिल्कुल सच है । क्या तुम इसका प्रत्यक्ष प्रमाण देखना चाहते हो ?''

''गुरुदेव ! यदि दिखा दें तो बड़ी कृपा होगी ।''

विशुद्धानंदजी ने तीन सरकंडे मँगवाये । उनमें से एक का छिलका उतरवाकर उसका धनुष बनाया । फिर कुछ मंत्र पढ़े तो वह धातु का सुन्दर धनुष बन गया । दूसरे सरकंडे को अभिमंत्रित किया । वह स्टील का पैनी नोकवाला तीर बन गया !

फिर तीर में अग्निदेवता का आह्वान करके वह तीर सामने के एक बरगद के वृक्ष पर छोड़ दिया । क्षणमात्र में बरगद के पेड़ में आग लग गयी ! बाबा ने कहा : ''पूरा अग्निशामक दल (फायरब्रिगेड) भी इस पेड़ की अग्नि को शांत नहीं कर सकता ।''

फिर तीसरा सरकंडा लेकर उसका तीर बनाकर उसमें वरुण देवता का आह्वान किया और उस तीर को जलते हुए बरगद के पेड़ पर छोड़ा तो देखते-ही-देखते पेड़ की आग बुझ गयी !

विशुद्धानंदजी ने मंत्र पढ़ा तो वे धनुष-बाण पुनः तीन सरकंडे बन गये !

जरूरी नहीं है कि आपको जो समझ में नहीं आता वह है ही नहीं । शास्त्रों में जो लिखा है, सब सही है किन्तु उसे समझने के लिए संयम और एकाग्रता चाहिए, साथ ही उस विषय की गहराई में जाना चाहिए ।

✻

विशुद्धानंदजी के शिष्य थे गोपीनाथ कविराज जो भूतपूर्व प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी की गुरु आनंदमयी माँ के प्रति भी श्रद्धा रखते थे, उनसे मिलते थे । एक बार उन्होंने पूछा : ''महाराज ! ऐसे भी लोग हैं कि आपने चिट्ठी में कुछ लिखा और

वे चिट्ठी खोले बिना ही बता देते हैं कि चिट्ठी में क्या लिखा है। महाराज ! ऐसा हो सकता है क्या ?''

विशुद्धानंदजी : ''यह कोई बड़ी बात नहीं है। तुम एक चिट्ठी में जो लिखना चाहते हो, लिखो। लिखने के बाद चिट्ठी जला देना और उसकी राख को उड़ा देना। फिर आना।''

गोपीनाथजी ऐसा ही करके आये तब विशुद्धानंदजी ने तकिये के नीचे से वही चिट्ठी निकालकर दी, जिसमें पूछे गये प्रश्न का जवाब भी लिखा था !

गोपीनाथजी दंग रह गये कि मैंने जो लिखा था वही-का-वही इसमें लिखा है और हस्ताक्षर भी मेरे ही हैं ! मैंने तो इसे जला दिया था और राख भी उड़ा दी थी ! जो इसमें लिखा था वैसा तो कभी कहीं नहीं लिखा !''

असंभव कुछ नहीं है किन्तु एकाग्रता, संयम एवं तत्परता के अभाव में असंभव लगता है। यदि मानव किसी भी विषय का एकाग्रता, संयम एवं तत्परतापूर्वक अभ्यास करे तो वह उसमें अवश्य सफल हो सकता है।

बदनामी से डरें नहीं...

हो-होकर क्या हो जायेगा ? मौत आ जायेगी। इसमें नयी बात क्या है ? उसको तो बेचारी को आना ही है। वह शरीर पर आयेगी, इससे मेरा क्या बिगड़ेगा ?

बदनामी होगी। यदि पहले बदनामी योग्य कर्म किये हैं तो भविष्य में वैसे कर्मों से बचो, शुभकर्म करो। यदि झूठ-मूठ में बदनामी हुई है तो पाप जलाकर चली जायेगी। उससे क्यों डरना ? आप बुरे मत बनिये, भद्दे मत होइये किन्तु झूठी बदनामी होती है तो होने दीजिये। उससे क्या होगा ? आपका बल बढ़ जायेगा।

बदनामी से फायदा हुआ तो समाज की सेवा हो जायेगी। बदनामी से नुकसान हुआ तो भीड़ हट जायेगी, एकांत मिल जायेगा। इस प्रकार दोनों हाथों में लड्डू देखने की नजर पैदा कर दो तो मौज-ही-मौज है। - संत श्री आसारामजी बापू

मोक्ष का मार्ग

✲ ब्रह्मलीन ब्रह्मनिष्ठ स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज ✲

(१) प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है अपने को जानना, परमेश्वर की प्राप्ति का प्रयत्न करना। जैसे किसी व्यक्ति को किसी दूर नगर काशी या पुरी में जाना हो तो पहली आवश्यक बात यह है कि वह जान ले कि उस नगर का नाम क्या है और वह कहाँ है ? साथ ही वहाँ जाने के लिए रास्ता बतानेवाले की भी जरूरत है। इस प्रकार ही परम धाम 'ब्रह्मस्वरूप' है। उसके अनुभव के लिए कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग मार्ग हैं। ये मार्ग दर्शानेवाले ऋषि-मुनि, संत-महात्मा और वेद-शास्त्र हैं। महात्मागण अधिकारी की योग्यता देखकर जैसा उपदेश करें, उसके अनुसार चलने से, क्रमानुसार प्रयत्नशील रहने से मनुष्य अपने ध्येय पर पहुँच सकेगा और परम सुख की प्राप्ति कर सकेगा। संत उपदेशों के द्वारा मार्ग दर्शा ही रहे हैं, अब जिज्ञासु का कर्तव्य है, उनके द्वारा बताये मार्ग पर चलना और सदैव ध्येयप्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहना। किन्तु जो काशी आदि नगरों में पहुँचने के लिए केवल मुख से बोलता रहेगा ! वहाँ जाने के लिए चलेगा नहीं तो वह काशी नगरी में कदापि नहीं पहुँचेगा।

चलो चलो सबको कहे, विरला पहुँचे कोय।
एक कनक अरु कामिनी, दुर्गम घाटी दोय॥

इसका अर्थ यह है कि मोक्षमार्ग पर चलने की बात तो सब करते हैं, किन्तु वहाँ कोई विरला ही पहुँचता है। उस मार्ग में दो बाधाएँ हैं - एक काम और दूसरा कंचन अथवा धन आदि पदार्थ।

(२) किसी दूर देश जाने के लिए धन भी तो चाहिए । अपनी जेब में पैसे नहीं होंगे तो हम कैसे जायेंगे ? अतः पहले धनप्राप्ति का उद्यम करना पड़ता है । इसी प्रकार इस देह के त्याग के पश्चात् परलोक में ले जाने के लिए तुमने कोई पदार्थ इकट्ठा किया है ?

आये थे जिस बात को, भूल गये वह बात।
आगे लेकर क्या चलो, खाली दोनों हाथ ॥

गुरुवाणी में आया है :

आखले उड़े जल भर नाल । उखला पक्षी उड़ता है तो पहले वह अपना पेट पानी से भर लेता है । इसके अतिरिक्त उसके कंठ के पास एक थैली भी रहती है, उसे भी भर देता है ताकि प्यास लगने पर उससे अपनी प्यास बुझा सके । मनुष्य से वह पक्षी अच्छा है, जो अपने भविष्य का विचार करता है । हमें भी कुछ सोच-विचार कर परलोक ले जाने के लिए कुछ तो इकट्ठा करना चाहिए ।

नांगा आना, नांगा जाना, कोई न रहसी राजा राना ।

संसार के सब धनादि पदार्थ तो यहीं छोड़ चलेंगे, शरीर भी तो यहीं छोड़ देना पड़ेगा । श्री वेदव्यासजी कहते हैं कि धन, आभूषण, हीरे, मोती सब यहीं पेटियों में रह जायेंगे । भवन, गाड़ी, हाथी, घोड़े सब यहीं पड़े रहेंगे । स्त्री, कुटुम्ब परिवार, संतान आदि भी यहीं पड़े रहेंगे; सम्बन्धी भी श्मशान तक चलकर तेरी देह को जलाकर निराश होकर लौट आयेंगे, केवल धर्म ही जीव का संगी-साथी है ।

(३) भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को बताया था 'ज्ञान के बिना मुक्ति न होगी ।' अब प्रश्न यह है कि ज्ञान किसका ? क्या सांसारिक पदार्थों का ज्ञान अथवा शरीर और उसकी इन्द्रियों का ? औषधियों का ज्ञान अथवा मशीनरी का ? भगवान का कहना है कि आत्मा का ज्ञान ही शांति देनेवाला है ।

एक बात याद रखें कि जिसकी उत्पत्ति हुई है, उसका नाश होगा । यदि हमें ज्ञान को उत्पन्न करना है तो उसका नाश भी होगा । ऐसा नाशवान ज्ञान हमें नहीं चाहिए । ज्ञान तो यह है कि मैं शुद्ध सत्-चित्-आनंदस्वरूप आत्मा हूँ । मैं पहले भी था, अब भी हूँ और भविष्य में भी रहूँगा केवल विस्मृति के कारण अपने को जीव, देह आदि मान बैठा हूँ । केवल यह विस्मृति दूर करनी है, इसे ही हटाना है । इसके हटने से ही मनुष्य मुक्त होता है । तत्पश्चात् तो जो था वही रहेगा । 'मैं' अस्ति-भाति-प्रिय, एकरस, विकारों से रहित हूँ, यह दृढ़ निश्चय होना ही ज्ञान है । ज्ञान किसी अन्य स्थान से नहीं लाना है ।

दादू दूजा कोई नहीं, दूजी मन की दौड़ ।
दौड़ मिटी दुविधा गयी, वस्तु ठौर की ठौर ॥

(४) स्वप्न में अथवा जाग्रत में जो कुछ इन्द्रियों से दिखता अथवा भासता है, वह है साकार और उपाधिवाला । हमें अपनी वृत्ति उससे ऊँची बनानी है और निर्गुण-निराकार में स्थित होना है । प्रत्येक व्यक्ति देखता और समझता है कि शरीर, इन्द्रियाँ तथा अन्तःकरण मेरे हैं और मैं उनका स्वामी हूँ, उनको सत्ता देनेवाला हूँ, उनका साक्षी हूँ । ऐसा होते हुए भी यदि उनका हममें अभिमान आ जाय अर्थात् अपने को शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, अहंकार आदि मान बैठें, कर्ता-भोक्ता समझें, तो यह हमारी बुद्धिमत्ता नहीं कहलायेगी । हमें तो इस सत्य का निश्चय करना है कि हम शरीर नहीं इन्द्रियाँ नहीं, मन नहीं तथा बुद्धि और अन्तःकरण भी नहीं हैं, हम तो इनके साक्षी सत्-चित्-आनंदस्वरूप हैं ।

(५) हम शरीर से भिन्न हैं । हम 'मेरे कान, मेरे प्राण, मेरा मकान, मेरी भूमि, मेरा घोड़ा, मेरे कपड़े' कहते हैं । इसका अर्थ यह है कि हम ये नहीं हैं किन्तु हम कुछ अन्य हैं । वह है आत्मा, न बुझनेवाली जगमगाती ज्योति । हमें मृत्यु का लेशमात्र भी विचार नहीं करना चाहिए । जब हम जन्मे ही नहीं तो फिर मरेंगे कैसे ? हम तो अजर-अमर हैं । 'श्रीमद्भगवद्गीता' में भी भगवान कहते हैं कि 'हे अर्जुन ! तू वह शक्ति है, जिसे शस्त्र काट नहीं सकते, वायु सुखा नहीं सकती, आग जला नहीं सकती, जल गीला नहीं कर सकता । वह न घटता है न बढ़ता है । वह आत्मा दोनों कालों में समान, अखण्ड और सर्वव्यापक है.। ऐसा निश्चय धारण करो ।

(६) आपमें से कोई कहे कि 'हम शरीर तो नहीं हैं, फिर भला हम हैं क्या ? क्या अज्ञान हैं ?'

उत्तर यह है कि अज्ञान को भी कोई सत्ता जता रही है। 'तब हम कौन हैं ?' आप तो सबके साक्षी हैं ! अमर ज्योति हैं।

अपने-आप पछान, समझ मन दर्शन एही।

आत्मा अपनी जान है। उपाधि के कारण जैसे भवन में एक हिस्से को शयनकक्ष, दूसरे को पाकशाला आदि कहते हैं, वैसे ही यह सब है। **यथा पिण्डे, तथा ब्रह्माण्डे।**

(७) आप कौन हैं ? आप पाँच तत्त्वों से बनी देह नहीं हैं। शरीर में जो रक्त है, वह तो जल का भाग है। आप उसे 'मैं' मानते हैं। पाँच तत्त्वों के पच्चीस भाग हैं। आप उनके साक्षी हैं। भूख लगती है, प्यास लगती है, निद्रा आती है, क्रोध आता है, मोह उत्पन्न होता है। इन सब बातों को आप जानते हैं। शरीर की इन सब क्रियाओं के आप ज्ञाता हैं। इससे प्रकट है कि आप इन सबसे भिन्न हैं। आपका किसीसे भी सम्बन्ध नहीं, आप तो अजर-अमर हैं।

(८) जब तक सत् और असत् का विवेक नहीं होगा तथा जीवत्व ही का अभ्यास रहेगा, तब तक आत्मज्ञान न होगा। क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ का ज्ञान रखो। सारा जगत ब्रह्म की परछाई है। परछाई के पीछे पड़ने से भगवान की प्राप्ति नहीं होगी। तुम शरणागत बनो, तब योग्य गुरु प्राप्त होंगे और तत्पश्चात् सत्य को जान सकोगे।

(९) तुम तो राजाओं के राजा हो। शरीर तो आत्मा की परछाई है। ब्रह्माण्ड में सब आनंद मौजूद हैं, किन्तु वास्तव में आनंदस्वरूप तो आपका आत्मा ही है। अपनी वृत्ति उसमें लगाओ और ब्रह्मस्वरूप बनो। जो करना है, वह अब करो। संसार के सब काम होते रहेंगे, किन्तु ब्रह्मानंद की प्राप्ति का ऐसा अवसर फिर मिले या नहीं।

(१०) आत्मा-परमात्मा के ऐक्य का ज्ञान ही मुक्ति का साधन है। तुम नौकर नहीं, स्वामी हो। अंगुली उठा सकते हो और फिर नीचे कर सकते हो। जैसे चाहो वैसे कर सकते हो। मन तथा इन्द्रियों की शक्ति नहीं कि तुम्हारी आज्ञा न मानें। इससे प्रतीत होता है कि तुम इनके स्वामी हो, किन्तु तुम यह भुला बैठे हो। यह जानो और सदैव आनंद में रहो।

एकादशी माहात्म्य

[जया एकादशी : १३ फरवरी २००३]

युधिष्ठिर ने भगवान श्रीकृष्ण से पूछा : भगवन् ! कृपा करके यह बताइये कि माघ मास के शुक्लपक्ष में कौन-सी एकादशी होती है, उसकी विधि क्या है तथा उसमें किस देवता का पूजन किया जाता है ?

भगवान श्रीकृष्ण बोले : राजेन्द्र ! माघ मास के शुक्लपक्ष में जो एकादशी होती है, उसका नाम 'जया' है। वह सब पापों को हरनेवाली उत्तम तिथि है। पवित्र होने के साथ ही पापों का नाश करनेवाली तथा मनुष्यों को भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली है। इतना ही नहीं, वह ब्रह्महत्या जैसे पाप तथा पिशाचत्व का भी विनाश करनेवाली है। इसका व्रत करने पर मनुष्यों को कभी प्रेतयोनि में नहीं जाना पड़ता। इसलिए राजन् ! प्रयत्नपूर्वक 'जया' नाम की एकादशी का व्रत करना चाहिए।

एक समय की बात है। स्वर्गलोक में देवराज इन्द्र राज्य करते थे। देवगण पारिजात वृक्षों से युक्त नंदनवन में अप्सराओं के साथ विहार कर रहे थे। पचास करोड़ गन्धर्वों के नायक देवराज इन्द्र ने स्वेच्छानुसार वन में विहार करते हुए बड़े हर्ष के साथ नृत्य का आयोजन किया। गन्धर्व उसमें गान कर रहे थे, जिनमें पुष्पदन्त, चित्रसेन तथा उसका पुत्र - ये तीन प्रधान थे। चित्रसेन की स्त्री का नाम मालिनी था। मालिनी से एक कन्या उत्पन्न हुई थी, जो पुष्पवन्ती के नाम से विख्यात थी। पुष्पदन्त गन्धर्व को एक पुत्र था, जिसको लोग माल्यवान कहते थे। माल्यवान पुष्पवन्ती के रूप पर अत्यन्त मोहित था। ये दोनों भी इन्द्र के

संतोषार्थ नृत्य करने के लिए आये थे। इन दोनों का गान हो रहा था। इनके साथ अप्सराएँ भी थीं। परस्पर अनुराग के कारण ये दोनों मोह के वशीभूत हो गये। चित्त में भ्रान्ति आ गयी इसलिए वे शुद्ध गान न गा सके। कभी ताल भंग हो जाता था तो कभी गीत बंद हो जाता था। इन्द्र ने इस प्रमाद पर विचार किया और इसे अपना अपमान समझकर वे कुपित हो गये।

अतः इन दोनों को शाप देते हुए बोले : 'ओ मूर्खो ! तुम दोनों को धिक्कार है ! तुम लोग पतित और मेरी आज्ञाभंग करनेवाले हो, अतः पति-पत्नी के रूप में रहते हुए पिशाच हो जाओ।'

इन्द्र के इस प्रकार शाप देने पर इन दोनों के मन में बड़ा दुःख हुआ। वे हिमालय पर्वत पर चले गये और पिशाचयोनि को पाकर भयंकर दुःख भोगने लगे। शारीरिक पातक से उत्पन्न ताप से पीड़ित होकर दोनों ही पर्वत की कन्दराओं में विचरते रहते थे। एक दिन पिशाच ने अपनी पत्नी पिशाची से कहा :

'हमने ऐसा कौन-सा पाप किया है, जिससे यह पिशाचयोनि प्राप्त हुई है ? नरक का कष्ट अत्यन्त भयंकर है तथा पिशाचयोनि भी बहुत दुःख देनेवाली है। अतः पूर्ण प्रयत्न करके पाप से बचना चाहिए।'

इस प्रकार चिन्तामग्न होकर वे दोनों दुःख के कारण सूखते जा रहे थे। दैवयोग से उन्हें माघ मास के शुक्लपक्ष की एकादशी की तिथि प्राप्त हो गयी। 'जया' नाम से विख्यात वह तिथि सब तिथियों में उत्तम है। उस दिन उन दोनों ने सब प्रकार के आहार त्याग दिये, जल-पान तक नहीं किया। किसी जीव की हिंसा नहीं की, यहाँ तक कि खाने के लिए फल तक नहीं काटा। निरन्तर दुःख से युक्त होकर वे एक पीपल के समीप बैठे रहे। सूर्यास्त हो गया। उनके प्राण हर लेनेवाली भयंकर रात्रि उपस्थित हुई। उन्हें नींद नहीं आयी। वे रति या और कोई सुख भी नहीं पा सके।

सूर्योदय हुआ, द्वादशी का दिन आया। इस प्रकार उस पिशाच दंपति के द्वारा 'जया' के उत्तम व्रत का पालन हो गया। उन्होंने रात में जागरण भी किया था। उस व्रत के प्रभाव से तथा भगवान विष्णु की शक्ति से उन दोनों का पिशाचत्व दूर हो गया। पुष्पवन्ती और माल्यवान अपने पूर्वरूप में आ गये। उनके हृदय में वही पुराना स्नेह उमड़ रहा था। उनके शरीर पर पहले जैसे ही अलंकार शोभा पा रहे थे।

वे दोनों मनोहर रूप धारण करके विमान पर बैठे और स्वर्गलोक में चले गये। वहाँ देवराज इन्द्र के सामने जाकर दोनों ने बड़ी प्रसन्नता के साथ उन्हें प्रणाम किया।

उन्हें इस रूप में उपस्थित देखकर इन्द्र को बड़ा विस्मय हुआ ! उन्होंने पूछा : 'बताओ, किस पुण्य के प्रभाव से तुम दोनों का पिशाचत्व दूर हुआ है ? तुम मेरे शाप को प्राप्त हो चुके थे, फिर किस देवता ने तुम्हें उससे छुटकारा दिलाया है ?'

माल्यवान बोला : स्वामिन् ! भगवान वासुदेव की कृपा तथा 'जया' नामक एकादशी के व्रत से हमारा पिशाचत्व दूर हुआ है।

इन्द्र ने कहा : ...तो अब तुम दोनों मेरे कहने से सुधापान करो। जो लोग एकादशी के व्रत में तत्पर और भगवान श्रीकृष्ण के शरणागत होते हैं, वे हमारे भी पूजनीय होते हैं।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं : राजन् ! इस कारण एकादशी का व्रत करना चाहिए। नृपश्रेष्ठ ! 'जया' ब्रह्महत्या का पाप भी दूर करनेवाली है। जिसने 'जया' का व्रत किया है, उसने सब प्रकार के दान दे दिये और सम्पूर्ण यज्ञों का अनुष्ठान कर लिया। इस माहात्म्य के पढ़ने और सुनने से अग्निष्टोम यज्ञ का फल मिलता है। *('पद्मपुराण' से)*

सेवाधारियों व सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नगद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अतः अपनी राशि मनी ऑर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें। (२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरुआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जायेगी।

कर्मबंधन से मुक्ति कैसे ?

(उत्तरायण १४ जनवरी २००३ की पुण्यमयी वेला में पूज्यश्री का उद्‌बोधन :)

भारत में कैसे-कैसे योद्धा हो गये ! पिता की इच्छापूर्ति के लिए राज्य करने से तो इनकार कर ही दिया, साथ ही आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत का भी पालन किया था पितामह भीष्म ने। राज्य करने में वे समर्थ थे, किन्तु पिता की प्रसन्नता के लिए राज्य तक ठुकरा दिया !

सर्वतीर्थमयी माता, सर्वदेवमय पिता और ब्रह्ममय गुरु- इन तीनों की प्रसन्नता से इहलोक, देवलोक और ब्रह्मलोक तक की सफलता पाना सहज हो जाता है । जो माता-पिता की अवज्ञा करता है, अपमान या अवहेलना करता है वह अपना इहलोक और परलोक बिगाड़ता है । ब्रह्मवेत्ता गुरु से सम्पर्क करने में या ईश्वर की प्राप्ति में माता-पिता या कोई स्नेही रोकता है तो उनकी अवहेलना करना कोई अपराध नहीं, अन्यथा अवहेलनावाला अपने को विनाश के रास्ते ले जाता है।

जाके प्रिय न राम-बैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही।।

(विनय पत्रिका)

यह तुलसीदासजी ने मीराबाई की प्रार्थना के उत्तर में लिखा था।

क्या आपके माता-पिता ईश्वर के रास्ते रोकनेवाले, अवहेलना के योग्य हैं ? या आप अवहेलना करके कुदरती कोप के भाजन बनने जा रहे हो ? माता-पिता और गुरु की अवहेलना करनेवाले वासना-प्रेरित पुतलों का पतन हमने देखा है । अगर भविष्य उज्ज्वल चाहते हो तो आपका कर्म धर्म-प्रेरित होना चाहिए, वासना-प्रेरित नहीं।

भीष्म पितामह युधिष्ठिर से कहते हैं कि 'जो पुत्र माता-पिता को संतुष्ट करता है, उनकी आज्ञा का पालन करता है उसे फिर किसी तीर्थ में जाने की आवश्यकता नहीं रहती। इहलोक एवं परलोक की सफलताएँ उसकी मुट्ठी में आ जाती हैं । जो अपने गुरु को संतुष्ट करता है वह ब्रह्मलोक तक की सफलता प्राप्त कर लेता है। वह सभी ऋषि-मुनियों को प्रसन्न कर लेता है। जो ब्रह्मवेत्ता सद्‌गुरु को सम्मानित करता है, प्रसन्न करता है वह त्रिभुवन में सभीको प्रसन्न करनेवाला पद पा लेता है।'

बड़ी ऊँची समझ के धनी थे भीष्म पितामह !

जो माता-पिता का आदर-सत्कार करता है वह स्वयं आदरणीय हो जाता है और अवहेलना करनेवाला आदरणीय दिखे फिर भी उसका आदर टिकता नहीं । जिन माता-पिता ने बाल्यकाल में हमें पाला-पोसा उनकी वृद्धावस्था में उनका पालन-पोषण करना हमारा कर्तव्य है । जो पुत्र माता-पिता का पालन-पोषण नहीं करता, उसका इहलोक और परलोक, सब उसे विफलता की खाई में गिरानेवाला हो जाता है।

अपने को नियम से गिरानेवाले परम हितैषी की बात भी ठुकरा देनी चाहिए। प्रह्लाद ने पिता की आज्ञा का उल्लंघन कर दिया, मीरा ने पति की बात को ठुकरा दिया, तुकारामजी ने पत्नी की बात को ठुकरा दिया। मैं (संत श्री आसारामजी बापू) तो यह बात भी हृदयपूर्वक कहूँगा कि ईश्वर-प्राप्ति में अगर गुरु भी बाधक बनते हों तो उनकी बात की भी अवहेलना की जा सकती है। बलि राजा ने गुरु की बात को ठुकरा दिया था। ईश्वर-प्राप्ति ही सर्वोपरि है।

महाराज युधिष्ठिर ने पितामह भीष्म से प्रश्न किया : ''हमारे जैसे राजकाज में फँसे हुए लोग कर्मबंधन से कैसे छूटें ?''

भीष्मजी ने कहा : ''युधिष्ठिर ! जीव को भूलकर भी अपना कर्मबंधन नहीं बढ़ाना चाहिए।

कर्म करने की शक्ति तो सभीमें है किन्तु अज्ञानी जीव उससे कर्मबंधन बढ़ाने की मूर्खता करते हैं। कर्म ऐसे करने चाहिए कि कर्मों से कर्म कट जायें।

जो मन को वश में करता है, दंभ नहीं करता, विषयों की ओर बढ़ती हुई इच्छाओं को रोकता है, कटुवचन सुनकर भी उत्तर नहीं देता वह मुक्ति एवं शांति का अधिकारी हो जाता है। जो मार खाने पर भी शांत और सम रह लेता है, वह तपस्वी मुक्ति का अधिकारी है। जो अतिथि एवं लाचार को आश्रय देता है, दूसरों की निन्दा न करता है न सुनता है उसका स्मरण करने से औरों को भी सत्प्रेरणा मिलती है। जो नियमपूर्वक शास्त्र पढ़ता है, धर्म के रहस्य को सुनता व जानता है, दिन में नहीं सोता, उसका पुण्य बढ़ता है एवं आरोग्य की रक्षा होती है। जो गुरुदत्त मार्ग से आत्मविश्रांति पाता है उसे सामर्थ्य प्राप्त होता है।

जो स्वयं आदर नहीं चाहता वरन् दूसरों को आदर देता है, वह मोक्ष का अधिकारी, राजकाज करते हुए भी सत्स्वरूप ईश्वर को पाने के रास्ते चलने में सफल होता है।

जो क्रोध के वशीभूत नहीं होता, वह दूसरों को भी शांत करने में सक्षम हो जाता है। जो स्वाद के लिए नहीं अपितु स्वास्थ्य के लिए भोजन करता है, वह राजकाज करते हुए भी मुक्ति-मार्ग का पूर्ण अधिकारी हो जाता है।

युधिष्ठिर ! धर्म का मार्ग बहुत पवित्र है।''

किस समय क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए - इस बात को भी समझ लेना चाहिए। आपके सत्य से किसीका अहित होता हो, किसीकी हत्या होती हो तो उस समय चुप रहना आपके लिए धर्म है। कभी 'नरो वा कुंजरो वा' कहने से भी धर्म की रक्षा होती हो और अधर्म नियंत्रित होता हो तो वह आपके लिए उचित है। जैसे, श्रीकृष्ण ने करवाया था।

जो अपने अकर्ता, अभोक्ता आत्मा को जानकर सुखी हो जाता है, वह किसीसे न राग करता है न द्वेष। श्रीकृष्ण की दृष्टि में न कोई अच्छा है न बुरा, न कोई अपना है न पराया। फिर भी वे सबसे यथायोग्य व्यवहार करते हुए दिखते हैं।

श्रीकृष्ण युद्ध जैसे घोर कर्म के सूत्रधार हैं। वे भक्त के वचन की रक्षा के लिए अपने वचन से कभी मुकर भी जाते हैं। किन्तु ये सारी चेष्टाएँ भी वे ऐसी ऊँचाइयों को छूते हुए करते हैं जहाँ कर्तृत्व और भोक्तृत्व की गंध ही नहीं है। जहाँ सुख और दुःख की सत्यता नहीं है। जहाँ उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का प्रवेश नहीं है।

ऋजुयोग

(१७ जनवरी को पूज्यश्री ने साबरमती के तट पर बने विशाल अस्थाई पंडाल में शिविरार्थियों को ध्यान की गहराइयों में प्रवेश कराया। फिर साधना की सरल व्यावहारिक युक्तियाँ बताते हुए बोले :)

भक्त्या पुमांजातविराग ऐन्द्रियाद् दृष्टश्रुतान्मद्रचनानुचिन्तया।
चित्तस्य यत्तो ग्रहणे योगयुक्तो यतिष्यते ऋजुभिर्योगमार्गैः ॥

(श्रीमद्भागवत : ३.२५.२६)

'भगवत्कथा-श्रवण से मनुष्य को भक्ति उत्पन्न होती है। भक्ति हो जाने पर देखे हुए और स्वार्गादि सुने हुए जितने इन्द्रियजन्य सुख हैं, उनमें वैराग्य उत्पन्न हो जाता है। ऐसा योगयुक्त पुरुष आत्मसाधन के उद्योग में तत्पर होकर ऋजु-योगमार्गों से प्रभु-प्राप्ति के लिए यत्न करता रहता है।'

ईश्वर के नाम का अर्थ सुनना, ईश्वर के स्वरूप के बारे में सुनना, सोचना और उसीमें मन को लगाना - यह ऋजुयोग है।

मन में ईश्वरत्व भर जाय, ईश्वर का स्वरूप भर जाय... इससे वासनाओं को मन में छुपने के लिए जगह कम हो जायेगी और मन को अंतरात्मा का रस पाने में सुविधा होगी।

एक महात्मा को किसीने केला दिया। जैसे ही महात्मा ने केले का छिलका उतारा, उन्हें भगवान की गरिमा का चिन्तन हो आया : 'हे प्रभु, तू कैसा है ! केले के छिलके के अंदर हलवे जैसी मिठाई कैसे छिपाकर रख दी है तूने ! कैसे केले लगाये, बड़े हुए तथा भक्त को प्रेरणा हुई और 'एकादशी है, महाराज को भूख लगी होगी।' ऐसा सोचकर वह मेरे लिए इन्हें लेकर आया ! केला तो हाथ में रहा और मन भगवान में लग गया।

आपका मन रस चाहता है। वह देखकर, खाकर, संभोग करके भी रस ही तो चाहता है लेकिन कमरतोड़ कार्यक्रम ने कब रस टिकाया है ? उससे तो सत्यानाश हो जाता है। ये सारे रस उनके भोगी को विरसता की खाई में फेंक देते हैं। सच्चा रस आत्मा का ही है। नित्य-नवीन रस आत्मा से ही मिलता है। विकारों से नित्य-नवीन रस नहीं मिलेगा। उनसे तो ऊबान आ जायेगी, कमजोरी आ जायेगी और आखिर में जीवन व्यर्थ हो जायेगा...

दुःख के चिन्तन से दुःख बढ़ता है और सुख के चिन्तन से सुख बढ़ता है। लोग सुख में अपने को मूर्च्छित कर देते हैं। दुःख आता है हमें सजाग करने के लिए, हमारी मूर्च्छा तोड़ने के लिए। आप दुःख और सुख दोनों का सदुपयोग करो। सुख आये तो बाँटो और दुःख आये तो वैराग्य लाओ। सुख और दुःख, दोनों सपना है। इनको देखनेवाला परमात्मा मेरा अपना है। यह ऋजुयोग है।

सुख-दुःख का समर्थन न करो, विरोध भी न करो। उनका चिन्तन छोड़ दो, बस। जिन बातों को हटाना है उनका चिन्तन व पुनः-पुनः स्मरण करना छोड़ दो, क्योंकि स्मरण से वे जोर पकड़ती हैं और जिसे जीवन में लाना है उसका पुनः-पुनः स्मरण एवं चिन्तन करो। उसके विषय में पुनः-पुनः चर्चा करो, सोचो तो वह आ जायेगा।

जिसको हटाना है उसको भुला दो। दुःख को हटाना है तो उसे भुला दो और सुख को लाना है तो सुखस्वरूप गुरु का, भगवान के स्वरूप का जो ज्ञान है उसका आश्रय लो। भगवान और गुरु, आकृतियाँ दो हैं परन्तु तत्त्व से एक ही हैं। इस प्रकार का ब्रह्मभाव और ब्रह्मज्ञान, सुख, आनंद और मुक्ति को लायेगा।

जिन साधनों से आप शरीर के सुख भोगते हैं, उन्हें तो एक दिन मरना है, जलना है, दफन होना है। जिन चीजों का आधार लेकर आप सुखी होना चाहते हो, वे छूट जानेवाली हैं। लेकिन तुम अपने को कभी छोड़ नहीं सकते। जिसे छोड़ नहीं सकते, उस अमर आत्मा की महिमा है। फिर उसका नाम सद्गुरु रख दो, उसे भगवान कह दो या इष्ट कह दो। यह ऋजुयोग है, सरल व सहज योग है।

मनुष्य की माँग का नाम है भगवान। हर मनुष्य चाहता है कि 'मैं सुखी रहूँ, निर्बंध रहूँ।' बंधन और दुःख कोई नहीं चाहता। जो निर्बंध है, सुखस्वरूप है, उसी आत्मा-परमात्मा का नाम

भगवान है। 'श्रीमद्भागवत' में ऋजुयोग के लिए चार बातें बतायी गयी हैं :

(१) सत्संग : सद्गुरु अथवा संत-महापुरुषों का सत्संग करना।

(२) भगवत्स्वरूप की कथा : हजार अश्वमेध यज्ञ और सैकड़ों बाजपेय यज्ञ करनेवाले को धन्यवाद है। किन्तु उनका फल भगवत्तत्त्व की कथा सुनने के फल के १६वें हिस्से की भी बराबरी नहीं कर सकता।

अश्वमेध सहस्त्राणि वाजपेय शतानि च।
शुकशास्त्र कथायाश्च कलां नार्हन्ति षोडशम्॥

श्रीकृष्ण कैसे हैं ? सच्चिदानंद स्वरूप हैं।

श्रीराम कैसे हैं ? **राम ब्रह्म परमारथ रूपा।**

भगवत्स्वरूप की कथाएँ बार-बार आदर से सुनें। जिसको बार-बार सुनते हैं उसमें मन लग जाता है। वास्तव में भगवान का स्वरूप ऐसा है कि आप उसको ठीक से समझ जाओ तो आपका मन उसके सिवा कहीं जा ही नहीं सकता।

उमा राम सुभाउ जेहिं जाना। ताहि भजनु तजि भाव न आना॥
(श्रीरामचरित.सु.कां. : ३३.२)

(३) कीर्तन : धर्मो रक्षति कीर्तनात्। कीर्तन से धर्म की रक्षा होती है।

श्रीमद्भागवत-माहात्म्य के प्रथम अध्याय में कीर्तन की महिमा के विषय में एक प्रसंग आता है कि भक्ति के पुत्र - ज्ञान और वैराग्य मूर्च्छित पड़े हैं। नारदजी सत्संग सुनाते हैं तो ज्ञान-वैराग्य सचेत हो जाते हैं। भक्ति के दुःख दूर होते हैं और भक्ति प्रसन्न होती है। जहाँ भक्ति होती है वहाँ भगवान नारायण पधारते हैं। भक्ति के प्रसन्न होने पर नारायण भी पधारे और नारदजी वीणा लेकर कीर्तन करने लगे। प्रह्लाद अपना साज बजाने लगे। तो इन्द्र कैसे चुप बैठते ? वे भी अपना मृदंग बजाने लगे। राग आलापने में चतुर अर्जुन भी आये। भगवान के अन्य भक्तों ने भी कीर्तन-रस का ऐसा सुन्दर माहौल उभारा कि किसीको भी देश-काल की सुधि न रही। यह है कीर्तन की महिमा !

(४) ध्यान : ऋजुयोग में सहायक चौथा उपाय है ध्यान। कीर्तन के बाद ध्यान अवश्य करना चाहिए।

सत्संग, भगवत्स्वरूप की कथा का श्रवण-चिन्तन, कीर्तन और ध्यान- ये ऋजुयोग में सफलता दिला देते हैं।

तिथि अनुसार आहार-विहार

१. प्रतिपदा को कूष्माण्ड (कुम्हड़ा, पेठा) न खाये, क्योंकि यह धन का नाश करनेवाला है।

द्वितीया को बृहती (छोटा बैंगन या कटेहरी) खाना निषिद्ध है।

तृतीया को परवल खाना शत्रुओं की वृद्धि करनेवाला है।

चतुर्थी को मूली खाने से धन का नाश होता है।

पंचमी को बेल खाने से कलंक लगता है।

षष्ठी को नीम की पत्ती, फल या दातुन मुँह में डालने से नीच योनियों की प्राप्ति होती है।

सप्तमी को ताड़ का फल खाने से रोग बढ़ता है तथा शरीर का नाश होता है।

अष्टमी को नारियल का फल खाने से बुद्धि का नाश होता है।

नवमी को लौकी खाना गोमांस के समान त्याज्य है।

दशमी को कलम्बी का शाक गोमांस के समान त्याज्य है।

एकादशी को शिम्बी (सेम) खाने से, द्वादशी को पूतिका (पोई) खाने से अथवा त्रयोदशी को बैंगन खाने से पुत्र का नाश होता है।

२. अमावस्या, पूर्णिमा, संक्रांति, चतुर्दशी और अष्टमी तिथि, रविवार, श्राद्ध और व्रत के दिन स्त्री-सहवास तथा तिल का तेल, लाल रंग का साग व काँसे के पात्र में भोजन करना निषिद्ध है।

३. रविवार के दिन अदरक भी नहीं खाना चाहिए।

४. कार्तिक मास में बैंगन और माघ मास मे

मूली का त्याग कर देना चाहिए।

५. सूर्यास्त के बाद कोई भी तिलयुक्त पदार्थ नहीं खाना चाहिए।

६. लक्ष्मी की इच्छा रखनेवाले को रात में दही और सत्तू नहीं खाना चाहिए। यह नरक की प्राप्ति करानेवाला है।

७. पहले रसदार चीजें खाये, बीच में गरिष्ठ चीजें खाये और अंत में पुनः द्रव-पदार्थ ग्रहण करे। भोजन के बाद छाछ पीना आरोग्यदायी है परन्तु पानी पीना निषिद्ध है। इससे मनुष्य कभी बलहीन और आरोग्यहीन नहीं होता।

८. बायें हाथ से लाया गया अथवा परोसा गया अन्न, बासी भात, शराब मिला हुआ, जूठा और घरवालों को न देकर अपने लिए बचाया हुआ अन्न खाने योग्य नहीं है।

९. जो लड़ाई-झगड़ा करते हुए तैयार किया गया हो, जिसको किसीने लाँघ दिया हो, जिस पर रजस्वला स्त्री की दृष्टि पड़ गयी हो, जिसमें बाल या कीड़े पड़ गये हों, जिस पर कुत्ते की दृष्टि पड़ गयी हो तथा जो रोकर या तिरस्कारपूर्वक दिया गया हो, वह अन्न राक्षसों का भाग है।

१०. अंजलि से या खड़े होकर जल नहीं पीना चाहिए।

११. गाय, भैंस और बकरी के दूध के सिवाय अन्य पशुओं के दूध का त्याग करना चाहिए। इनके भी ब्याने के दस दिन के अन्दर का दूध काम में नहीं लेना चाहिए।

१२. ब्राह्मणों को भैंस का दूध, दही, घी और मक्खन नहीं खाना चाहिए।

१३. लक्ष्मी चाहनेवाला मनुष्य भोजन और दूध को बिना ढके न छोड़े।

१४. जूठे हाथ से मस्तक का स्पर्श न करे, क्योंकि समस्त प्राण मस्तक के ही अधीन हैं।

१५. बैठना, भोजन करना, सोना, गुरुजनों का अभिवादन करना और (अन्य श्रेष्ठ पुरुषों को) प्रणाम करना - ये सब कार्य जूते पहने हुए न करे।

१६. जो मैले वस्त्र धारण करता है, दाँतों को स्वच्छ नहीं रखता, अधिक भोजन करता है, कठोर वचन बोलता है और सूर्योदय तथा सूर्यास्त के समय सोता है, वह यदि साक्षात् भगवान विष्णु भी हो तो उसे भी लक्ष्मी छोड़ देती है।

१७. उगते हुए सूर्य की धूप, चिता का धुआँ, वृद्धा स्त्री, झाड़ू की धूल और पूरी तरह न जमा हुआ दही - इनका सेवन व फटे हुए आसन का उपयोग दीर्घायु चाहनेवाले पुरुष को नहीं करना चाहिए।

१८. अग्निशाला, गौशाला, देवता और ब्राह्मण के समीप तथा जप, स्वाध्याय और भोजन व जल ग्रहण करते समय जूते उतार देने चाहिए।

१९. सोना, जागना, लेटना, बैठना, खड़े रहना, घूमना, दौड़ना, कूदना, लाँघना, तैरना, विवाद करना, हँसना, बोलना, मैथुन और व्यायाम - इन्हें अधिक मात्रा में नहीं करना चाहिए।

२०. दोनों संध्या, जप, भोजन, दन्तधावन, पितृकार्य, देवकार्य, मल-मूत्र का त्याग, गुरु के समीप, दान तथा यज्ञ - इन अवसरों पर जो मौन रहता है, वह स्वर्ग में जाता है।

२१. गर्भहत्या करनेवाले के देखे हुए, रजस्वला स्त्री से छुए हुए, पक्षी के खाये हुए और कुत्ते से छुए हुए अन्न को नहीं खाना चाहिए।

(ब्रह्मवैवर्त पुराण, ब्रह्मखण्ड, अध्याय : २७)

२२. शुक्रवार, रविवार, षष्ठी, सप्तमी, नवमी, अमावस्या, प्रतिपदा और संक्रांति के दिन आँवला नहीं खाना चाहिए।

आँवला सेवन निषेध	कारण
षष्ठी	निःसंतान
सप्तमी	आयुष्य, धन, स्त्रीनाश
नवमी	आयुष्य नाश
शुक्रवार	दरिद्रता
रविवार	आयुष्य, धन, स्त्रीनाश

रविवार और सप्तमी के दिन आँवले से स्नान करना भी वर्जित है। **(पद्मपुराण : अध्याय ६२)**

लघुशंख स्मृति : ६८ व दालभ्य स्मृति : १६४ के अनुसार भी सप्तमी को आँवला खाने से धन की हानि होती है।

*

ब्लड कैंसर गायब !

हमारे मित्र की लड़की मुंबई में ९वीं कक्षा में पढ़ती थी।

२००१ अप्रैल में उसे ब्लड कैंसर हो गया था। गरीब घर की इकलौती लड़की... तभी बापूजी ने सोनी चैनल पर अपने सत्संग में तुलसी-रस व शहद की चमत्कारिक दवा बतायी। हमने तुरंत उसकी माँ को फोन करके यह दवा बता दी। उन्होंने उसी दिन से तुलसी का रस और शहद एवं ज्वारे का रस देना शुरू कर दिया और कुछ ही दिनों में वह ठीक हो गयी।

अब वह एकदम स्वस्थ है एवं खेलकूद में उसने पूरे भारत में प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया है। कैसी है बापूजी की कृपा !

- आशा वर्मा

५०४, आनंद विहार, मुंबई (महाराष्ट्र).

गीता प्रश्नोत्तरी

(१) गीता में कितने अध्याय हैं ? (२) श्रीमद्भगवद्गीता की रचना किसने की ? (३) गीता का मूल ज्ञान क्या है ? (४) श्रीकृष्ण ने गीता में ज्ञान का उपदेश किसको दिया है ? (५) अर्जुन के ध्वज के ऊपर क्या निशान था ? (६) महाभारत युद्ध में सर्वप्रथम शंख किसने बजाया ? (७) अर्जुन के शंख का नाम क्या था ? (८) हृषिकेश किसका नाम है ? (९) मानव-शरीर किन-किन तत्त्वों से बना है ? (१०) धर्मयुद्ध में मरनेवाले की क्या गति होती है?

सार बातें

(उत्तरायण शिविर १४ से १९ जनवरी ०३ के दौरान पूज्यश्री के श्रीमुख से निःसृत अमृतवाणी...)

१४ जनवरी : आज के पावन दिवस पर पूज्यश्री ने भक्तों को संबोधित करते हुए कहा : ''आज उत्तरायण है। आज से सूर्यनारायण का रथ उत्तर की तरफ चलता है। अब अंधकारमयी रात्रि छोटी होती जायेगी और प्रकाशमय दिवस लम्बे होते जायेंगे। हम भी आज दृढ़ निश्चय करें कि अपने जीवन में से अंधकारमयी वासना की वृत्ति को कम करते जायेंगे और सेवा तथा प्रभु-प्राप्ति की सद्वृत्ति को बढ़ाते जायेंगे।

आज सूर्यनारायण दक्षिणायन से उत्तरायण की तरफ पधारे हैं। हम भी अब विषय-विकारमय निम्न स्तर के जीवन से ऊपर की ओर उठें।''

१५ जनवरी : ''जो नियति है वह तो होकर ही रहेगी। नियति तीन प्रकार की होती है। मंद, तीव्र और तरतीव्र। मंद को तो आसानी से हटा सकते हैं। तीव्र को हटाने के लिए ज्यादा पुरुषार्थ चाहिए और तरतीव्र को तो... उसकी सत्यता न मानें, उसका कर्तृत्व-भोक्तृत्व मन में न आने दें तो शिथिल हो जायेगी। नियति को भी धुँधला किया जा सकता है। समझो, नियति है आपको कंगाल करने की, दुःखी करने की और आप कंगाल भी हो गये किन्तु दुःखी होना-न-होना आपके हाथ की बात है। ऐसे ही आपको कोई बड़ा पद मिले ऐसी नियति है, किन्तु उसमें अहंकार करना या न करना यह आपके हाथ की बात है।

ऐसा नहीं सोचें कि 'क्या करें ? नियति है...' यदि प्रारब्ध से सब होता हो तो सत्संग किसलिए ? पुरुषार्थ किसलिए ? सत्संग और सत्शास्त्र दुःख तथा बंधन की नियति को धुँधला करने के लिए हैं। अतः नियति का सदुपयोग करें।''

१७ जनवरी : मनुष्य की माँग का दूसरा नाम है भगवान। ऐसा कोई जीव नहीं है जो बंधन चाहता हो, दुःख, चिन्ता, विफलता चाहता हो। कभी विफल न हों, कभी बंधन में न पड़ें - यह सभी चाहते हैं। जहाँ बंधन, विफलता आदि नहीं हैं उस चैतन्य परमेश्वर का नाम 'भगवान' है। उसीकी सत्ता से

भरण-पोषण होता है। उसीकी सत्ता से गमनागमन होता है। उसीकी सत्ता से वाणी उठती है। उसीकी सत्ता से योगी सब कुछ करता है। भगवान जितने आपके हितैषी हैं, उतना हितैषी दुनिया में दूसरा कोई नहीं है।

१८ जनवरी : ''जल का दान करने से तृप्ति होती है। तेल का दान करने से अनुकूल संतान पैदा होती है। दीप का दान करने से उत्तम नेत्र मिलते हैं, भूमिदान से सब सुलभ होने लगता है।'' इस प्रकार किस वस्तु का दान करने से क्या फल मिलता है - इस विषय पर भी पूज्य बापूजी ने आज के प्रथम सत्र में प्रकाश डाला।

१९ जनवरी : ''आपके ऊपर बाहर का कितना भी नियंत्रण हो लेकिन मन को यदि धर्माचरण से प्राप्त सुख का स्वाद नहीं मिलेगा तो जैसे बाह्य सुविधाएँ और कायदे-कानून की सुविधा अधिक मिलने के बाद भी अमेरिका के लोग परेशान और दुःखी हैं, वैसे आप लोग भी परेशान और दुःखी ही रहेंगे। आपके ऊपर धर्म का शासन होना चाहिए। आप यह तब मानेंगे जब आपके मन को थोड़ा धर्म का स्वाद मिलेगा और यह तब होगा जब आप धर्म का शासन मानेंगे एवं धर्म तथा सत्शास्त्रों के अनुकूल संयम-नियम से रहेंगे।

जैसे आपने माता-पिता-गुरुओं का शासन माना तो आप स्नातक हुए। फिर कसरत करते-करते कमीश्नर, डी.एस.पी. या उद्योगपति बने। किसी-न-किसी का शासन माना तब आप लौकिक जगत में चमके हैं। ऐसे ही आध्यात्मिक सुख का अनुभव करने के लिए शास्त्र और सद्गुरु का शासन मानें तो आप आत्म-साक्षात्कार भी कर सकते हैं।''

※ ऋषि प्रसाद पत्रिका के सभी सेवादारों तथा सदस्यों को सूचित किया जाता है कि ऋषि प्रसाद पत्रिका की सदस्यता के नवीनीकरण के समय पुराना सदस्य क्रमांक / रसीद क्रमांक एवं सदस्यता 'पुरानी' है - ऐसा लिखना अनिवार्य है। जिसकी रसीद में यह नहीं लिखा होगा, उस सदस्य को नया सदस्य माना जायेगा।

※ नये सदस्यों को सदस्यता के अंतर्गत वर्तमान अंक के अभाव में उसके बदले एक पूर्व प्रकाशित अंक भेजा जायेगा।

भेटासी (गुज.) : १० से १२ जनवरी तक भेटासी आश्रम (गुज.) में सत्संग कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। भेटासी, बड़ौदा, आणंद व आस-पास के सैकड़ों गाँवों से आये श्रद्धालु भक्तों ने विशाल पंडाल को पहले ही दिन नन्हा कर दिया। दूसरे दिन भी वही हाल। तीसरे दिन तो तौबा पुकार गये पंडाल बढ़ानेवाले। बीसों हजार लोग पंडाल के बाहर प्यारे प्रभु की सरिता में, समर्थ सद्गुरु की स्नेह-धारा में पावन हुए। धूप और भीड़ के कारण होनेवाली असुविधा प्रभु के प्यारों को कहाँ डिगाये !

राम के दुलारों को, ऐश-आराम की चाह नहीं।
आ जाये असुविधाएँ और विघ्न, मुख से निकलती आह नहीं।

यह माहौल देखते ही बनता था। सभीके मुख पर प्रसन्नता, दिल-दिमाग में दिलबर दाता का ज्ञान और हरिनाम... ॐ आनंद... हरि ॐ...

अंतिम दिन बड़े भण्डारे का आयोजन हुआ जिसमें बड़ी संख्या में बालक, वृद्ध, युवा सभी सम्मिलित हुए।

वहाँ एकत्रित भक्तों की विशाल संख्या... भगवान व भगवत्प्राप्त सत्पुरुषों के प्रति उनका अहोभाव, श्रद्धा एवं भक्तिभाव देखते ही बनता था। किसीने ठीक ही कहा है : 'भारतवर्ष की वास्तविक झाँकी देखनी हो तो गाँवों में जाइये। भारत गाँवों में बसता है।'

११ जनवरी का प्रातःकालीन सत्र विशेष रूप से छात्र-छात्राओं के लिए था। दूर-दूर से यहाँ आये हजारों विद्यार्थियों के अनुशासन, आज्ञापालन, तितिक्षा, शिष्टाचार आदि सद्गुणों से पूज्यश्री प्रसन्न हुए और घोषणा की कि यहाँ के छात्र-छात्राओं को आगामी 'विद्यार्थी सर्वांगीण उत्थान शिविर' में प्राथमिकता देकर अवश्य प्रवेश दिया जायेगा।

नदी तट का विशाल पंडाल भी नन्हा पड़ा !

अमदावाद में साबरमती के तट पर स्थित आश्रम में १४ से १९ जनवरी तक 'ध्यान योग साधना शिविर' का आयोजन किया गया। इस बार भक्तों की भीड़ को ध्यान में रखकर ऊपर के व्यास भवन की जगह नदी-तट पर करीब डेढ़ लाख वर्ग फुट में विशाल पंडाल का निर्माण किया गया किन्तु श्रद्धालु भक्तों के उमड़ते सैलाब के आगे वह भी नन्हा पड़ गया ! इस पंडाल के अलावा ऊपर का व्यास भवन भी भक्तों से खचाखच भरा रहता था। पूज्यश्री के दर्शन सभीको ठीक से हो सकें इस हेतु कई टी.वी. और प्रोजेक्टर की भी व्यवस्था की गयी थी। करीब डेढ़ लाख की संख्या में लोग उपस्थित थे, किन्तु सत्संग के समय इतनी शांति रहती थी कि सुई गिरने तक की आवाज सुनाई दे ! घोर कलियुग में भी मानो, सत्ययुग का साम्राज्य छाया हुआ था !

मकर संक्रांति के पावन दिवस पर एवं माघ मास में तिल के उपयोग की महिमा पर शास्त्रीय दृष्टि से प्रकाश डालते हुए पूज्य बापूजी ने कहा : ''जो माघ मास में निम्न छः प्रकार से तिलों का उपयोग करता है, वह इहलोक और परलोक में वांछित फल पाता है : तिल का उबटन, तिलमिश्रित जल से स्नान, तिल का अर्घ्य, तिल का होम, तिल का दान और तिलयुक्त भोजन। किन्तु ध्यान रखें - **रात्रि को तिल व तिल के तेल से बनी वस्तुएँ खाना वर्जित है।''**

१५ जनवरी : आज के सायंकालीन सत्र में पोषण और तृप्ति पर प्रकाश डालते हुए पूज्य बापूजी ने कहा : ''पोषण और तृप्ति इन दोनों की सभीको जरूरत है। शरीर का पोषण और मन की प्रसन्नता, तृप्ति। आवश्यकताएँ विधाता ने बनायी हैं तो उनकी पूर्ति भी सहज में ही होनी चाहिए। उन्होंने जैसी आवश्यकताएँ बनायी हैं वैसी चीजें सहज में प्राप्त हैं। पोषण और तृप्ति सहज में ही प्राप्त हैं, किन्तु विलासिता और व्यर्थ चिन्तन ने उन्हें दबा दिया है।''

पूज्यश्री की मौलिक और गहन चिन्तन का परिचय देनेवाली १५ जनवरी के सत्संग की ऑडियो कैसेट व विडियो सी.डी. सभीके लिए श्रवण-मनन करने योग्य है।

१६ जनवरी : धर्म का रस किसको नहीं मिलता है ? इस विषय पर प्रकाश डालते हुए पूज्य बापूजी ने कहा : ''निषिद्ध कर्म करनेवालों को धर्म का रस नहीं मिलता। जो साररहित व निष्प्रयोजन बोलते हैं, बिना पूछे किसीकी वस्तु ले लेते हैं, जो तन-मन से दूसरों को दुःख पहुँचाते हैं, जो परस्त्री या परपुरुष के साथ सम्बन्ध रखते हैं उन्हें धर्म का रस नहीं मिलता।''

१७ जनवरी : आज के सत्संग में श्रीमद्भागवत के 'ऋजुयोग' पर प्रकाश डालते हुए पूज्यश्री ने कहा : ''कलियुग के जीवों के लिए भागवत में सरल उपाय बताया गया है - ऋजुयोग। ऋजुयोग माने सरल योग।

भगवान के स्वरूप का श्रवण करना, भगवान की गरिमा का स्मरण करना, उसमें विश्रांति पाना - यह सब ऋजुयोग के अंतर्गत आता है।''

१८ जनवरी : आज माघ पूर्णिमा के अवसर पर आश्रम-परिसर में पूरे भारतभर से आये पूनम-व्रतधारियों का ताँता-सा लगा रहा। शिविरार्थियों एवं पूनम-व्रतधारियों की आध्यात्मिक साधना की सुरक्षा हेतु पूज्यश्री ने कृपा करके उन्हें 'रक्षा-कवच' के बारे में बताया।

१८ जनवरी की ऑडियो कैसेट या विडियो सी.डी. से साधकगण लाभ उठायें और 'रक्षा कवच' से अपनी साधना व सुसंस्कारों की सुरक्षा करें। 'रक्षा कवच' प्रहरी की भाँति साधक की सुरक्षा करता है, बशर्ते इसे सिद्ध कर लिया जाय। इसकी विधि अत्यन्त सरल है।

१९ जनवरी को 'ध्यान योग शिविर' की पूर्णाहुति हुई। कुछ नये अनुभव, साधना की कुछ नयी कुंजियाँ तथा एक नवीन स्फूर्ति व ताजगी लिये शिविरार्थी रवाना हुए अपने-अपने घरों की ओर...

पूज्य बापूजी का आगामी कार्यक्रम

जगन्नाथपुरी (उड़ीसा) में : गीता भागवत सत्संग, १४ से १६ फरवरी २००३. तालबनिया मैदान, जगन्नाथपुरी. फोन : (०६७१) २६३११९७. मो. ९४३७०२१४३१.

पूर्णिमा दर्शन : १६ फरवरी २००३

ब्रह्मज्ञानी की दृष्टि अमृतवर्षी... ब्रह्मज्ञानी का दर्शन बड़भागी पावहिं...
साबरमती के पावन तट पर सद्गुरुदेव को अपने बीच पाकर उनकी
अमृतमयी नजरों से निहाल होते बड़भागी साधक-साधिकाएँ।

आओ मिल मंगलगान करें, 'ऋषि प्रसाद' अभियान करें। गुरुवर के इस दैवी कार्य का घर-घर में प्रचार करें।
अंधेरी (मुंबई), 'ऋषि प्रसाद' सेवा मण्डल के सेवाधारियों ने निकाली महा संकीर्तन यात्रा।

R.N.I. NO. 48873/91 REGISTERED NO. GAMC/1132/2003 LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENCE NO. 207. POSTING FROM AHMEDABAD 2-10 OF EVERY MONTH.
BYCULLA STG. WITHOUT PRE-PAYMENT LICENCE NO. 236. REGD. NO. TECH/47 833/MBI/2003 POSTING FROM MUMBAI 9-10 OF EVERY MONTH.
DELHI REGD. NO. DL-11513/2003 WITHOUT PRE-PAYMENT LICENCE NO. U(C) 232/2003 POSTING FROM DELHI 10-11 OF EVERY MONTH.

साबरमती तट पर विशाल पंडाल... तात्त्विक सूत्रात्मक सत्संग की ऊँचाइयाँ... ध्यान की गहराइयाँ... पुण्यमय आरती के क्षण... पुराने जिज्ञासु साधकों का संग... उत्तरायण का पुण्यकाल... और क्या-क्या बतायें इस वर्ष के 'उत्तरायण ध्यान योग शिविर' के बारे में ! जिन्होंने इन सुवर्णमय क्षणों का लाभ लिया, वे ही जाने इसका अनोखापन। कभी नहीं भूल पायेंगे इन अनमोल क्षणों को...